MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 3

वर्ष 7, अंक 1, जनवरी - मार्च, 2021
पौष.- चैत्र, वि. सं. 2077, ₹ 50

मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

20-37
मूल्यपरक पत्रकारिता के पुरोधा दीनदयाल उपाध्याय
प्रो. प्रमोद कुमार

44-49
सेक्यूलरिज्म (धर्मनिरपेक्षता) बनाम श्रीराम मंदिर पुनरुत्थान
डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा

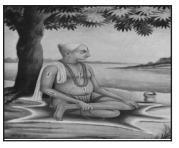
50-55
श्रीरामचरितमानस में निहित संस्कृति के सूत्र
डॉ. चंदन कुमारी

38-43
भारतीय राजनीति पर राष्ट्रनीति के यक्ष-प्रश्न
ओम प्रकाश मिश्र

56-59
स्वस्तिक का महत्त्व
शंकर लाल महेश्वरी

60-64
पलायन की अपेक्षा जीवन में रुचि बनाए रखना श्रेयस्कर
सीता राम गुप्ता

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

स्वामी- मंगल सृष्टि के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता, बी-170, प्रियदर्शनी विहार, दिल्ली-110092 द्वारा प्रकाशित एवं अंकित प्रिंटिंग प्रेस, 9326, शाही मोहल्ला, रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, द्वारा मुद्रित।
संपादक : सुनील पांडेय

RNI
DELHIN/2015/59919

ISSN
2394-9929

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-42633153
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 4

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 5

अथ

पिछला वर्ष जाते-जाते आशा की किरण देता गया। जिससे मानवता के मुखमंडल की चिंता-रेखाएँ कुछ धूमिल हुई हैं। पिछले वर्ष महामारी ने जितनी प्रचंडता से मानव को दबाया, उसका उत्पीड़न किया, उतनी ही प्रतिबद्धता व जीवट से मानव ने उसके चंगुल से बाहर निकलने का प्रयास किया। परिणामत: बीमारी के पहले वर्ष में ही वैज्ञानिक उनकी वैक्सीन बनाने में कामयाब रहे। यह सफलता अभूतपूर्व है।

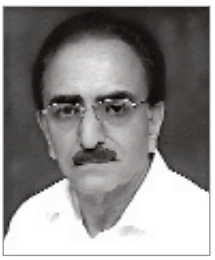

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

प्राय: एक वैक्सीन के अनुसंधान में चार से पाँच वर्ष का समय लग जाता है। दूसरी ओर दशकों के प्रयासों के बाद भी एचआईवी के लिए वैक्सीन आजतक उपलब्ध नहीं हो पाई। इसी प्रकार 'इबोला' का संक्रमण 1976 में शुरू हुआ था, लेकिन उसकी प्रभावी वैक्सीन अभी पिछले वर्ष ही विकसित हो पाई है। अत: एक वर्ष में ही कोविड-19 की तीन-चार वैक्सीन का विकास मानवता के लिए महनीय उपलब्धि है।

हमारे लिए यह गर्व का विषय है इस अभियान में हमारी स्वदेशी कंपनियाँ भी पीछे नहीं रही। भारत बायोटेक तथा जायड्स इस स्पर्धा में हमकदम हैं। भारत बायोटेक ने तो विदेशी कंपनी फाइजर तथा इंडियन सीरम इंस्टीट्यूट के साथ ही वैक्सीन के अधिकारिक प्रयोग के लिए आवेदित किया है।

वैक्सीन का अविष्कार एक शुभ शकुन है, लेकिन यह दीर्घ यात्रा की शुरुआत भर है। इसके बाद इसके उत्पादन, वितरण का कार्य भी कम कठिन नहीं। अमीर देशों को शायद इतनी कठिनाइयाँ न आएँ, लेकिन वास्तविक समस्या अविकसित निर्धन देशों की है। ब्रिटेन में तो टीकाकारण का अभियान शुरू भी हो गया है। इसके साथ ही जापान, कनाडा, जर्मनी, दुबई आदि ने अपनी समृद्धि के चलते जनसंख्या से भी तीन-चार गुना अधिक वैक्सीन सुरक्षित कर ली हैं। सीमित साधनों के कारण अविकसित व गरीब देश वास्तव में चिंतित हैं।

जहाँ तक भारत का सवाल है, हमारी स्थिति संतोषजनक है। एक तो हमारी स्वदेशी कंपनियाँ भी अनुसंधान कर रही हैं। दूसरा भारत वैक्सीन बनाने वाले देशों में पहले से ही अनुभवी व अग्रणी है। तीसरा हमारे देश में हर वर्ष करोड़ों बच्चों व गर्भवती महिलाओं तक वैक्सीन पहुँचाने का प्रभावी इंफ्रास्ट्रक्चर है। हमारी वैक्सीन विषयक क्षमता पर विश्व को भरोसा है।

वैक्सीन के आते ही करोना एकदम भाग जाएगा, ऐसा सोचना भी ठीक नहीं। अभी कई वर्ष का संघर्ष बाकी है। पूर्ण टीकाकरण की प्रक्रिया कई वर्षों में पूरी होगी। वैक्सीन का प्रभाव छह माह तक रहेगा, या वर्ष भर तक; यह भी व्यवहार में आने के बाद पता चलेगा। इतनी आशा है कि इस महामारी के अंत की शुरुआत तो वैक्सीन के आने से हो ही गई है। मानव राहत की साँस ले सकता है। •

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 6

दीनदयाल जी ने भारतीय आर्थिक चिंतन को एक नयी दिशा दी, वे देश व समाज को अर्थ विकृति से हटाकर अर्थ संस्कृति की दिशा में ले जाना चाहते थे। आज पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति या तो मात्र अर्थपरायण बनकर रह गया है या फिर अपने निजी व्यक्तित्व को नष्ट कर वह एक नंबर बनता जा रहा है। दूसरी ओर साम्यवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रेरणा व पहल को समाप्त कर उसे जेल के एक कैदी के समान बना दिया गया है। इस प्रकार दोनों ही व्यवस्थाओं में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोता जा रहा है। अतः हमें ऐसी अर्थरचना बनानी होगी जिसमें व्यक्ति को गरिमापूर्ण स्थान मिले और वह पुरुषार्थशील बनकर राष्ट्र के सार्वजनीय मंगल में अपनी पूर्णक्षमता के साथ योगदान कर सके। विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी संपूर्ण परंपरा के आधार पर हम ऐसा भारत निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ संपूर्ण मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्म का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 7

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

दीनदयाल जी का एकात्म अर्थचिंतन

दीनदयाल जी वर्तमान अकादमिक एवं तकनीकी शब्दावली के संकीर्ण-सीमित अर्थों में तो अर्थशास्त्री नहीं थे, पर वे सचमुच अर्थवेत्ता थे, राष्ट्रोत्थान एवं समाज की सर्वांगीण प्रगति के आकांक्षी कर्मरत द्रष्टा थे। उन्होंने आर्थिक परिदृश्य, सामाजिक-आर्थिक समस्याओं एवं उनके समाधान के बारे में जो विचार प्रकट किए उसे अर्थचिंतन कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

मूलभूत मान्यताएँ

ऐसा लगता है कि दीनदयाल जी का संपूर्ण अर्थचिंतन दो मूलभूत मान्यताओं पर आधारित था।

एकात्मवादी दृष्टिकोण — वे समाज व संसार के विभिन्न अवयवों-घटकों को अलग-थलग, पूर्णतया असंबद्ध इकाइयों के रूप में स्वीकार नहीं करते थे। वे तो व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि एवं परमेष्टि के बीच संबंधों की अखंड मंडलाकार रचना के आधार पर विभिन्न इकाइयों के बीच सावयवी, परस्पर पूरकता, परस्परानुकूलता, एकात्मता एवं संवेदनशीलता के संबंध मानते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि— ''भारतीय संस्कृति संपूर्ण जीवन का, संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्मवादी है।'' (एकात्म मानववाद, पृ. 25-26)। इस प्रकार वे टुकड़ों-टुकड़ों में खंडित विचार

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 8

पूँजीवादी अर्थशास्त्र मनुष्य को एक अर्थलोलुप प्राणी मानकर चलता है। उसके सभी निर्णय आर्थिक दृष्टिकोण से होते हैं। .....वह अर्थोत्पादन की प्रेरणा से ही काम करता है। दूसरी ओर मार्क्स और साम्यवादी व्यवस्था ने मनुष्य को मात्र रोटीमय बना दिया। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्र 'आर्थिक मनुष्य' की अवधारणा मानकर चलता है। दीनदयाल जी के अनुसार इस आर्थिक चिंतन और उस पर आधारित अर्थव्यवस्था का यह परिणाम हुआ कि हाड-मांस का वास्तविक मानव हमारी दृष्टि से ओझल ही हो गया है। मनुष्य मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर इन चारों का समुच्चय है। हम उसको टुकड़ों में बाँटकर विचार नहीं करते। व्यक्ति के बारे में भी हमने एकात्म एवं संकलित विचार किया है।

प्रक्रिया को ठीक नहीं मानते, दूसरे शब्दों में दीनदयाल जी समग्र-समन्वित एकात्म विश्वदृष्टि की मान्यता के आधार पर ही अपनी चिंतन प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए दिखाई देते हैं।

एकात्म संकलित अवधारणा — दीनदयाल जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण मान्यता व्यक्ति के संबंध में है। उनके अनुसार ''पूँजीवादी अर्थशास्त्र मनुष्य को एक अर्थलोलुप प्राणी मानकर चलता है। उसके सभी निर्णय आर्थिक दृष्टिकोण से होते हैं। .....वह अर्थोत्पादन की प्रेरणा से ही काम करता है।'' (77)। दूसरी ओर मार्क्स और साम्यवादी व्यवस्था ने मनुष्य को मात्र रोटीमय बना दिया। इस प्रकार आधुनिक अर्थशास्त्र 'आर्थिक मनुष्य' (Economic Man) की अवधारणा मानकर चलता है। दीनदयाल जी के अनुसार इस आर्थिक चिंतन और उस पर आधारित अर्थव्यवस्था का यह परिणाम हुआ कि हाड़-मांस का वास्तविक मानव हमारी दृष्टि से ओझल ही हो गया है। (77) इसलिए उन्होंने कहा कि मनुष्य मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर इन चारों का समुच्चय है। हम उसको टुकड़ों में बाँटकर विचार नहीं करते। (31) व्यक्ति के बारे में भी हमने एकात्म एवं संकलित विचार किया है। (30)।

इस प्रकार समग्र-एकात्म विश्वदृष्टि एवं व्यक्ति की एकात्म-संकलित अवधारणा, इन दो मान्यताओं पर आधारित है दीनदयाल जी का अर्थचिंतन और इसलिए इसे एकात्म अर्थचिंतन कहा जा सकता है।

विकास का समग्र चिंतन

दीनदयाल जी कहा करते थे कि आज का पश्चिम-प्रेरित अर्थशास्त्र अर्थ-काम केंद्रित अर्थचिंतन है। यह अधिकाधिक धनोत्पादन और अधिकाधिक उपभोग के एक वर्तुल चक्र में ही घूमता रहता है, अत: यह अधूरा एवं भोगवादी चिंतन है। उनका दृढ़ मत था कि जीवन के विभिन्न आदर्शों तथा देश-काल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण हमारे आर्थिक विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए। हम मार्शल और मार्क्स से बंधकर विचार नहीं कर सकते। (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, पृ. 11)। हमें विकास एवं अर्थतंत्र के एक ऐसे प्रारूप पर काम करना होगा जिसमें मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा की आवश्यकता की पूर्ति और उसके सर्वांगीण विकास का अवसर मिल सके। इस दृष्टि से हमारे मनीषियों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में चतुर्विध पुरुषार्थ की कल्पना रखी है। हमें इस संकल्पना की आज की आवश्यकता एवं संदर्भ के अनुसार व्याख्या एवं क्रियान्वयन करना होगा।

इसे थोड़ा विस्तार से समझाते हुए दीनदयाल जी

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 9

ने कहा था कि 'अर्थ' के अंतर्गत आज की परिभाषा के अनुसार राजनीति और अर्थनीति का समावेश होता है। 'काम' का संबंध मानव की विभिन्न कामनाओं की पूर्ति व तृप्ति से है। 'धर्म' में उन सभी नियमों, व्यवस्थाओं, आचरण संहिताओं तथा मूलभूत सिद्धांतों का अंतर्भाव होता है जिनसे अर्थ और काम की सिद्धि हो। इस प्रकार धर्म आधारभूत पुरुषार्थ है, किंतु फिर भी तीनों अन्योन्याश्रित तथा परस्पर पूरक व परस्पर पोषक हैं।

इतना तो सब मानने लगे हैं कि व्यापार-व्यवसाय अथवा धनार्जन के किसी भी क्रियाकलाप को सुचारू रूप से चलाने के लिए ईमानदारी, संयम, सत्य आदि धर्म के गुणों का पालन लाभदायक रहता है। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए दीनदयाल जी कहते हैं कि—अमेरिका वालों की दृष्टि में, 'ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ व्यावसायिक नीति है' (Honesty is the best business policy). यूरोप वालों के अनुसार 'ईमानदारी सर्वश्रेष्ठ नीति है' (Honesty is the best policy) किंतु भारत की परंपरा एक कदम आगे बढ़कर कहती है कि— 'ईमानदारी नीति नहीं अपितु सिद्धांत है (Honesty is not a policy but a principle)। यहीं भारत और संसार के अन्य देशों के चिंतन में अंतर आता है।

हमने धर्म को उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अनुसार धन कमाने के लिए मात्र साधन नहीं माना है, अपितु हमारे लिए वह एक आस्था व विश्वास है

और हर परिस्थिति में अपनाने लायक आचरण-शैली है। मोक्ष को हमने परम पुरुषार्थ माना है, तो भी अकेले उसके सेवन से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। वास्तव में तो हमने इन चारों पुरुषार्थों का भी संकलित विचार किया है। शेष तीन पुरुषार्थों को लोकसंग्रह के विचार से, निष्काम भाव से करने वाला व्यक्ति कर्मबंधन से छूटकर मोक्ष का अधिकारी होता है। (एकात्म मानववाद, 34-35)। इसी बात को इस रूप में कहा जा सकता है कि अर्थार्जन के समस्त क्रियाकलाप और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपभोग के कार्य धर्म की मर्यादा के अनुसार इस

हमने धर्म को उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अनुसार धन कमाने के लिए मात्र साधन नहीं माना है, अपितु हमारे लिए वह एक आस्था व विश्वास है और हर परिस्थिति में अपनाने लायक आचरण-शैली है। मोक्ष को हमने परम पुरुषार्थ माना है, तो भी अकेले उसके सेवन से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। वास्तव में तो हमने इन चारों पुरुषार्थों का भी संकलित विचार किया है। शेष तीन पुरुषार्थों को लोकसंग्रह के विचार से, निष्काम भाव से करने वाला व्यक्ति कर्मबंधन से छूटकर मोक्ष का अधिकारी होता है।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 10

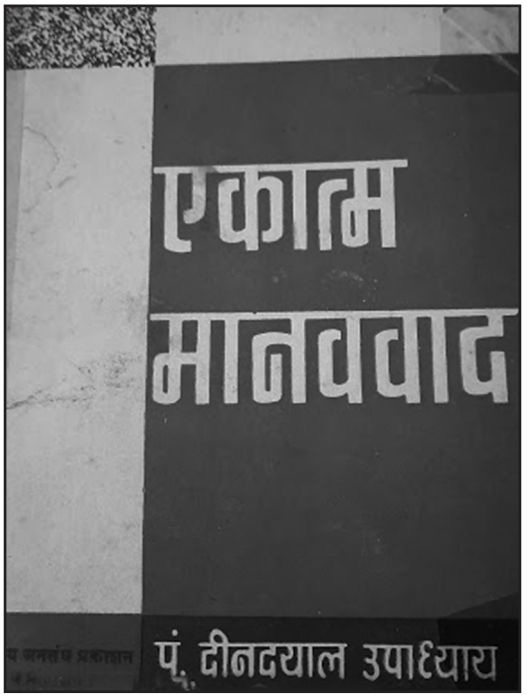

प्रकार चलाये जाने चाहिएँ जिससे कि मनुष्य मोक्ष की दिशा में अग्रसर हो सके। इस प्रकार दीनदयाल जी के विचारों के अनुसार हमें एक ऐसी अर्थरचना एवं अर्थव्यवस्था को विकसित करना होगा जिसमें धर्म और अर्थ, सदाचार और समृद्धि दोनों साथ-साथ चल सकें।

न्यूनतम आवश्यकताएँ

अधिक व्यावहारिक धरातल पर उतरते हुए दीनदयाल जी निर्देशित करते हैं कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था में न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारंटी एवं व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिए। न्यूनतम आवश्यकताओं में वे रोटी (संतुलित व पौष्टिक आहार), कपड़ा (ऋतु के अनुसार पर्याप्त मात्रा में), मकान (पीने का पानी एवं सेनिटेशन की सुविधाओं सहित) शिक्षा, स्वास्थ्य (समुचित चिकित्सा सुविधाओं समेत) एवं सुरक्षा को सम्मिलित करते हैं।

शिक्षा के संबंध में दीनदयाल जी का मत था कि वह संस्कारप्रद तथा देश व समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। उनके अनुसार देश के प्रत्येक बालक-बालिका को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा देना समाज का दायित्व है। फीस लेकर शिक्षा देना उन्हें मान्य नहीं, अत: शिक्षा नि:शुल्क होनी चाहिए। इस बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ से पैसा नहीं लेते बल्कि उस काम में पूँजी लगाते हैं, उसी प्रकार शिक्षा भी एक प्रकार का विनियोजन ही है। इसी प्रकार चिकित्सा भी नि:शुल्क होनी चाहिए। शिक्षित एवं स्वस्थ व्यक्ति ही समाज के लिए अपनी पूर्ण क्षमता से अधिकतम योगदान दे सकता है (एकात्म मानववाद, पृ. 71-73)।

आज प्रश्न यह है कि दीनदयाल जी के इन विचारों को कैसे एवं कितनी मात्रा में व्यवहार में लागू किया जा सकता है। इस दिशा में पूरी गंभीरता से क्रियान्वयन की व्यापक योजना बननी चाहिए।

सबको काम एवं रोजगार

अब प्रश्न यह है कि इन न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक साधन-सामग्री तथा

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की गारंटी एवं व्यवस्था अवश्य रहनी चाहिए। न्यूनतम आवश्यकताओं में रोटी (संतुलित व पौष्टिक आहार), कपड़ा (ऋतु के अनुसार पर्याप्त मात्रा में), मकान (पीने का पानी एवं सेनिटेशन की सुविधाओं सहित) शिक्षा, स्वास्थ्य (समुचित चिकित्सा सुविधाओं समेत) एवं सुरक्षा सम्मिलित है।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 11

वस्तुएँ व सेवाएँ कहाँ से और कैसे मिलेंगी ? यह तभी संभव है जब देश के व्यक्ति पुरुषार्थ करें और सब सक्षम एवं स्वस्थ व्यक्तियों को काम (रोजगार) मिले। दीनदयाल जी कहते हैं कि मानव को पेट और हाथ दोनों मिले हुए हैं, यदि हाथों को काम न मिले और पेट को खाना मिलता रहे तो भी मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। अत: 'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए। (एकात्म मानववाद, 73-74)। अर्थव्यवस्था में सब प्रकार की बेरोजगारी —अल्प बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी समाप्त होकर देश के प्रत्येक स्वस्थ व क्षमतावान व्यक्ति को रोजगार के अवसर उपलब्ध होने चाहिएँ।

दीनदयाल जी ने स्पष्ट रूप से कहा था कि ''प्रत्येक को वोट जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है वैसे ही प्रत्येक को काम यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदंड है।'' इस संबंध में वे आगे कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा काम मिलना चहिए जिससे उसका ठीक से जीविकोपार्जन हो सके, उसे अपना काम चुनने की स्वतंत्रता हो तथा उसे अपने काम के बदले न्यायोचित पारिश्रमिक मिले। इसके लिए रोजगार-केंद्रित उत्पादन, निवेश एवं विकास-रणनीति बननी चाहिए। (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, 29)। इस प्रकार दीनदयाल जी का जोर पूर्ण रोजगार अथवा 'हर हाथ को काम' देने वाली अर्थव्यवस्था बनाने पर था।

उत्पादन तंत्र एवं दिशा

देश व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति सतत विकास के लिए वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन होते रहना चाहिए। उत्पादन की पद्धति, प्रक्रिया, दृष्टि व दिशा के संबंध में दीनदयाल जी ने जो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, उनको जान लेना उपयोगी रहेगा।

मितव्ययी उत्पादन प्रक्रिया — दीनदयाल जी के अनुसार पश्चिम का अर्थशास्त्र उपभोग की सतत वर्धमान आकांक्षा व लालसा को पूरा करने के लिए अमर्यादित उत्पादन वृद्धि पर जोर देता है। इससे भी आगे बढ़कर पहले तरह-तरह की वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है और फिर उसे खपाने के लिए इच्छाएँ पैदा करना और बाजार तलाशने का काम किया जाता है। इसके लिए तमाम उत्तेजक, माँग परिवर्तक एवं प्रतियोगी भ्रमात्मक (Manipulative and competitive) विज्ञापनों, आकर्षक पैकेजिंग तथा बिक्री-संवर्धन के विभिन्न तौर-तरीकों का प्रयोग किया जाता है।

इस संबंध में दीनदयाल जी ने एक मजेदार उदाहरण दिया है — अमेरिका में चाकू की बिक्री बढ़ाने के लिए चाकू के बेंटे का रंग आलू के छिलके जैसा रखकर छिलकों के साथ चाकू को फेंक देने तक का प्रयोग किया गया। इस प्रकार अब उपभोग के लिए उत्पादन से भी आगे बढ़कर उत्पादन के लिए उपभोग का अर्थशास्त्र चल पड़ा है, यह विनाशोन्मुख है। पुराना फेंको और नया खरीदो। नया खरीदने की

मानव को पेट और हाथ दोनों मिले हुए हैं, यदि हाथों को काम न मिले और पेट को खाना मिलता रहे तो भी मनुष्य सुखी नहीं रहेगा। अतः 'प्रत्येक को काम' अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्ष्य होना चाहिए। अर्थव्यवस्था में सब प्रकार की बेरोजगारी–अल्प बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी , मौसमी बेरोजगारी समाप्त होकर देश के प्रत्येक स्वस्थ व क्षमतावान व्यक्ति को रोजगार के अवसर उपलब्ध होने चाहिएँ। प्रत्येक को वोट जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है वैसे ही प्रत्येक को काम यह आर्थिक प्रजातंत्र का मापदंड है।

चाह उपभोक्ता में पैदा करना; माँग पूरी करना नहीं; माँग पैदा करना यही आज अर्थव्यवस्था का लक्ष्य हो गया है। दीनदयाल जी के अनुसार यह घातक, विनाशोन्मुख एवं संसाधनों की फिजूलखर्ची करने वाला अर्थशास्त्र एवं अर्थव्यवस्था है। इसे बदलकर आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति के लिए संसाधनों की मितव्ययी उत्पादन—प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए। (एकात्म मानववाद, 68-69)।

प्राकृति संसाधनों की मर्यादा का रखें ध्यान — हमें उत्पादन में वृद्धि तो अवश्य करना है, पर ऐसा करते समय प्रकृति या प्राकृतिक संसाधनों की मर्यादा को न भूलें। इसका अर्थ है कि हमें प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग कर प्रकृति के साथ उच्छृंखलता करने वाली उत्पादन पद्धति व तकनोलोजी से बचना होगा तथा पुनरुत्पादनीय ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग एवं पर्यावरण पोषक तकनोलोजी पर अधिक ध्यान देना होगा। प्रकृति से हम उतना तथा इस प्रकार लें कि वह उस कमी को स्वयं पुनः पूरित कर ले।

हमें उत्पादन में वृद्धि तो अवश्य करना है, पर ऐसा करते समय प्रकृति या प्राकृतिक संसाधनों की मर्यादा को न भूलें। इसका अर्थ है कि हमें प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग कर प्रकृति के साथ उच्छृंखलता करने वाली उत्पादन पद्धति व तकनोलोजी से बचना होगा तथा पुनरुत्पादनीय ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग एवं पर्यावरण पोषक तकनोलोजी पर अधिक ध्यान देना होगा। प्रकृति से हम उतना तथा इस प्रकार लें कि वह उस कमी को स्वयं पुनः पूरित कर ले।

स्वदेशी, स्वावलंबी एवं विकेंद्रित अर्थतंत्र — दीनदयाल जी का आग्रह स्वदेशी, स्वावलंबी एवं विकेंद्रित अर्थतंत्र एवं उत्पादन तंत्र अपनाने पर था। वे विचार, व्यवस्थापन, पूँजी, उत्पादन-तंत्र, प्रगति की दिशा, विकास प्रतिमान एवं उपभोगशैली के बारे में अत्यधिक विदेशी निर्भरता के विरुद्ध थे। वे स्वदेशी को प्रतिगामी एवं कालबाह्य संकल्पना मानने वालों के विचारों से कतई सहमत नहीं थे। (दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन, खंड 3 पृ.118)। उनका स्पष्ट मत था कि हमें अपना देश, अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ही समाधान के मार्ग तलाशने होंगे। इस संबंध में उन्होंने संस्कृत के इस सुभाषित का उल्लेख किया है— 'यद्देशस्य यो जंतुः तद्देशस्य तस्यौषधम्' (जिस देश में जो जीव पैदा होता है, वहीं उस देश में उसके लिए औषधि भी पैदा होती है। (एकात्म मानववाद, 23)।

हमें इस प्रकार के अर्थतंत्र एवं उत्पादन-तंत्र की रचना करनी होगी जिसमें स्थानीय संसाधनों, स्थानीय कौशल और स्थानीय श्रम के आधार पर स्थानीय आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति की जा सके। हमें विदेशी पूँजी, विदेशी तकनोलोजी एवं विदेशी माल कम से कम और बहुत अनिवार्य होने पर ही प्रयोग करना चाहिए। अपना विकास अपने बलबूते करने की दिशा में ही आगे बढ़ना चाहिए तभी हम स्वदेशी-स्वावलंबी अर्थतंत्र खड़ा कर पायेंगे।

युगानुकूल व देशानुकूल तकनीक का उपयोग यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या हम अपनी पुरानी तकनीक-तकनोलोजी, उत्पादन-पद्धति से ही चिपके रहकर विदेशी पूँजी एवं विदेशी तकनोलोजी को पूर्णतया नकार दें अथवा अंधानुकरण कर पूर्णतया स्वीकार कर लें। इस संबंध में दीनदयाल जी ने एक व्यावहारिक मार्गदर्शन दिया है। उनके अनुसार जो अपना है, (अपनी पद्धति, कार्यशैली, तकनीक-तकनोलोजी,

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 13

जीवनशैली आदि) उसे युगानुकूल बनाकर और जो पराया विदेशी है (विदेशी पद्धति, तकनीक-तकनोलोजी आदि) उसे देशानुकूल बनाकर अपनाना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संबंधों एवं व्यापार की दृष्टि से भी हम बंद अर्थव्यवस्था बनकर नहीं रह सकते और न ही हम अमीर देशों एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के परावलंबी बनकर उन्हें शोषण का अवसर दे सकते हैं। इसके लिए हमें समान धरातल पर विश्व के विभिन्न देशों के साथ परस्परावलंबी आर्थिक संबंध बनाने होंगे।

हमें ऐसी उद्योग व्यवस्था कायम करनी है जो कृषि के साथ सुसंबद्ध हो सके तथा कृषि से भार कम कर सके तो उसके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे उद्योगों को प्राथमिकता देनी होगी। थोड़े लोगो तथा सरल औजारों के साथ छोटी-छोटी इकाइयाँ ही आज की परिस्थिति में हमारे लिए सर्वोत्तम है।

विकेंद्रित उत्पादन तंत्र — दीनदयाल जी बड़ी-बड़ी उत्पादन इकाइयों एवं बड़े-बड़े उद्योगों के सहारे ही अर्थव्यवस्था चलाने के पक्षधर नहीं थे। इससे देश में केंद्रीयकरण पनपता है जो विषमता और बेरोजगारी को बढ़ाता है। अत: उनके अनुसार हमें व्यक्ति व परिवार आधारित, लघुयंत्राधिष्ठित आर्थिक विकेंद्रीकरण की प्रणाली विकसित करने पर जोर देना चाहिए और श्रम प्रधान विकेंद्रित ग्रामोद्योगों को सुदृढ़ करना चाहिए। (राष्ट्र जीवन की दिशा, 152; पं. दीनदयाल उपाध्याय विचारदर्शन, खण्ड 4; भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, 121)।

हमें ऐसी उद्योग व्यवस्था कायम करनी है जो कृषि के साथ सुसंबद्ध हो सके तथा कृषि से भार कम कर सके तो उसके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर छोटे उद्योगों को प्राथमिकता देनी होगी। थोड़े लोगों तथा सरल औजारों के साथ छोटी-छोटी इकाइयाँ ही आज की परिस्थिति में हमारे लिए सर्वोत्तम हैं। (भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, 73-74)।

कृषि एवं उद्योग

दीनदयाल जी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के बारे में समय-समय पर बहुत विस्तार से (विशेषकर भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा में) अपने विचार प्रकट किए हैं।

उत्पादकता वृद्धि — वे कृषि क्षेत्र में प्रति एकड़ एवं प्रति व्यक्ति निम्न उत्पादकता स्तर से बहुत चिंतित थे और दोनों दृष्टियों से उत्पादकता स्तर में वृद्धि करने के बारे में उन्होंने अनेक सुझाव दिए थे। उनका मानना था कि कृषि विकास की दृष्टि से हमें प्राविधिक (Technical) एवं संस्थागत (Institutional) दोनों प्रकार के कार्यक्रम साथ-साथ चलाने होंगे। प्राविधिक दृष्टि से हमें आधुनिक कृषि तकनोलोजी का समुचित मूल्यांकन करते हुए भारतीय परिस्थतियों के अनुरूप कृषि पद्धति में सुधार करना होगा। इस दृष्टि से भूमि की उर्वरता को बनाए रखने वाले खाद व बीज, फसल की अदला-बदली, बुवाई व कटाई के तरीकों, कृषि यंत्रों के प्रयोग, भूक्षरण को रोकने जैसी कई बातों पर विशेष ध्यान देना होगा।

अदेव मात्रिका कृषि— दीनदयाल जी ने इस बात को भली-भांति समझ लिया था कि खेती की पैदावार में वृद्धि करने के लिए सिंचाई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इन्पुट है। हमारे देश की खेती अधिकांशतया मानसून की कृपा पर निर्भर करती है जो अनियमित है और सब जगह और सब समय समान नहीं रहती। अत: उन्होंने अदेवमात्रिका कृषि की संकल्पना प्रस्तुत की

जिसका अर्थ है कि हमें कृषि को मॉनसून या इंद्र देव की कृपा पर ही नहीं छोड़ना चाहिए। इस दृष्टि से वे पर्याप्त मात्रा में छोटी सिंचाई योजनाओं, कुँओं, तालाबों, बावडियों एवं जलबंध (चैक डैम्स) के विस्तार पर अधिक बल देने के पक्षधर थे। उनकी मंशा थी कि हम सिंचाई कि ऐसी व्यापक एवं पक्की व्यवस्था कर दें जिससे कि हर खेत को पानी पहुँचाया जा सके।

कृषि जोत का आकार — संस्थागत कार्यों की दृष्टि से भूस्वामित्व, भूमि के उपविभाजन एवं अपखंडन को रोक कर आर्थिक जोत बनाए रखने, सहकारी खेती, विपणन, भंडारण, साख-सुविधाओं, मूल्य निर्धारण की दृष्टि से भी समुचित व्यवस्थाएँ करनी होंगी। (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, 44-68)।

औद्योगिक विकास — दीनदयाल जी कृषि के साथ-साथ औद्योगिक विकास के बारे में भी पूर्ण सचेत थे। उनका मानना था कि बढ़ती जनसंख्या का खेती पर से भार घटाने, कृषि में उत्पन्न कच्चे माल का उपयोग करने और कृषि को आवश्यक साधन सामग्री, यंत्र-औजार प्रदान करने, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने, देश की निर्यात क्षमता बढ़ाने, स्वावलंबन आदि कई दृष्टियों से औद्योगिकीकरण अत्यंत आवश्यक है। किंतु वे कुछ विशेष क्षेत्रों एवं विशेष वस्तुओं के उत्पादन को छोड़कर, शेष सबके लिए बड़े उद्योगों के स्थान पर श्रम प्रधान छोटे उद्योगों के अधिक पक्षधर थे। उनके अनुसार, 'हमारे लिए उद्योगों की वही प्रणाली उपयुक्त है जिसमें हम कुटुंब के आधार पर काम को जीवन का अंग बना कर चल सकें। इसमें मालिक-मजदूर, उत्पादक-उपभोक्ता आदि के संबंधों का ठीक-ठीक निर्धारण हो सकेगा। हम इन संबंधों का नियमन पश्चिम के मूल्यों से नहीं कर सकते। देश के व्यापक औद्योगिकीकरण में मानव संबंधों का निर्माण हमें अपने ही मूल्यों पर करना होगा।' (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, 105-106।)

अपरमात्रिक उद्योग नीति— उद्योगों के क्षेत्र में भी दीनदयाल जी ने 'अपरमात्रिक उद्योग नीति' की संकल्पना दी थी, इसका तात्पर्य स्वावलंबन से कुछ अधिक उत्पादन करने वाली उद्योग नीति से है ताकि

चैक डैम

हमे कृषि को मॉनसून या इंद्र देव की कृपा पर ही नहीं छोड़ना चाहिए। इस दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में छोटी सिंचाई योजनाओं, कुँओं, तालाबो, बावडियो एवं जलबंध (चैक डैम्स) के विस्तार पर अधिक बल देना होगा। हम सिंचाई की ऐसी व्यापक एवं पक्की व्यवस्था कर दे जिससे कि हर खेत को पानी पहुँचाया जा सके।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 15

प्रोद्योगिकी का संबंध मशीन से है। हमें उनका चयन विचार पूर्वक करना होगा। हम अपने देश में उपलब्ध उत्पादन उपकरणों के साथ मेल खाने वाली मशीन का प्रयोग करे। श्रम और शक्ति, पूँजी और प्रबंध, माल और माँग ये सब मशीन के स्वरूप को निश्चित करने वाले होने चाहिएँ। ....किंतु आज कुछ ऐसा हो रहा है कि हम मशीन को ध्रुव मान कर उसके अनुसार शेष सबको बदलने का विचार करते है। मशीन के लिए मनुष्य को बदलने पर विवश कर रहे है। संपूर्ण उत्पादन प्रणाली एक मशीन पर केंद्रित हो गयी है। .....आज देश में जहाँ एक ओर मशीन के श्रद्धालु भक्त हैं तो दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मौजूद है। .....वास्तव में मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है न मित्र, वे एक साधन है तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है।

शेष बचे अतिरेक को निर्यात करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। इस प्रकार दीनदयाल जी देश में ऐसा औद्योगिक ढाँचा बनाना चाहते थे जिसके द्वारा आवश्यक वस्तुओं के मामले में देश स्वावलंबी बन सके और अंतरराष्ट्रीय गुणवता स्तर की वस्तुओं का निर्यात करके देश के लिए आवश्यक वस्तुओं का आयात करने की क्षमता निर्माण कर सके। प्रो. विश्वेश्वरैय्या को उद्धृत करते हुए दीनदयाल जी ने कहा था कि औद्योगिक नीति का विचार करते समय हमें सात बातों पर ध्यान देना चाहिए—

1. मनुष्य (Men)
2. माल (Material)
3. मुद्रा (Money)
4. मशीनरी (Machinery)
5. प्रबंध (Management)
6. शक्ति (Motive Power)
7. बाजार (Market)

वास्तव में ये सातों कारक परस्पर निर्भर एवं परस्परपूरक हैं। अत: इनके बीच योग्य संतुलन बनाकर ही हम समुचित औद्योगिक विकास कर सकते हैं। (भारतीय अर्थनीति, विकास की एक दिशा, 69-70)। उनके अनुसार, हमें मनुष्य के उत्पादन स्वातंत्र्य पर आघात करने वाली पूँजीवाद की तकनीकी प्रक्रिया को आँख बंद करके स्वीकार नहीं करना चाहिए। हमें शिल्पकार एवं स्वनियोजित क्षेत्र को नष्ट करने वाला औद्योगिकीकरण भी नहीं चाहिए। उनके औद्योगिकीकरण के सिद्धांत को संक्षेप में निम्नलिखित सूत्र से बताया जा सकता है—

ज ×क × य = इ

यहाँ ज=जन, क = कर्म की व्यवस्था, य = यंत्र, इ = समाज का इच्छित संकल्प आधुनिक औद्योगीकरण में 'य' (यंत्र सबको नियंत्रित करता है। हमें इसके स्थान पर ऐसी अर्थव्यवस्था निर्माण करना है जो 'ज' (जन) और 'इ' (समाज का इच्छित संकल्प) के नियंत्रण में 'क' (कर्म की व्यवस्था) और 'य' (यंत्र) का नियोजन करे।

मशीन एवं प्राद्योगिकी — इसी क्रम में दीनदयाल जी ने उत्पादन में मशीन के प्रयोग एवं चयन के बारे में भी अपने विचार प्रकट किए हैं। वे कहते हैं 'प्रोद्योगिकी का संबंध मशीन से है। हमें उनका चयन विचार पूर्वक करना होगा। हम अपने देश में उपलब्ध उत्पादन उपकरणों के साथ मेल खाने वाली मशीन का प्रयोग करें। श्रम और शक्ति, पूँजी और प्रबंध, माल और माँग ये सब मशीन के स्वरूप को निश्चित करने वाले होने चाहिएँ। ....किंतु आज कुछ ऐसा हो रहा है कि हम मशीन को ध्रुव मान कर उसके अनुसार शेष सबको बदलने का विचार करते हैं। मशीन के लिए

मनुष्य को बदलने पर विवश कर रहे हैं। संपूर्ण उत्पादन प्रणाली एक मशीन पर केंद्रित हो गयी है। .....आज देश में जहाँ एक ओर मशीन के श्रद्धालु भक्त हैं तो दूसरी ओर कट्टर दुश्मन भी मौजूद हैं। ..... वास्तव में मशीन न तो मनुष्य का शत्रु है न मित्र, वे एक साधन हैं तथा उसकी उपादेयता समाज की अनेक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, 80-84)। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं, मशीन देशकाल परिस्थिति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। विज्ञान की आधुनिकतम प्रगति कि वह उपज है, किंतु प्रतिनिधि नहीं। ज्ञान किसी देश-विदेश की बपौती नहीं, किंतु उसका प्रयोग प्रत्येक देश अपनी परस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार करता है। हमारी मशीन हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल ही चाहिए। वह हमारे सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन मूल्यों की पोषक नहीं तो कम से कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए।' (एकात्म मानववाद, 75)। मशीन और प्रौद्योगिकी के संबंध में इससे अधिक सटीक और व्यावहारिक चिंतन शायद ही कोई और हो सकता है।

मशीन देशकाल परिस्थिति निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। विज्ञान की आधुनिकतम प्रगति कि वह उपज है, किंतु प्रतिनिधि नहीं। ज्ञान किसी देश-विदेश की बपौती नहीं, किंतु उसका प्रयोग प्रत्येक देश अपनी परस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार करता है। हमारी मशीन हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल ही चाहिए। वह हमारे सांस्कृतिक एवं राजनीतिक जीवन मूल्यों की पोषक नहीं तो कम से कम अविरोधी अवश्य होनी चाहिए।'

पूँजी— दीनदयाल जी के अनुसार आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण के लिए पूँजी का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्व का है। पूँजी व बचत जुटाने के लिए साधारणतया दो मार्ग बताए जाते हैं— राष्ट्रीय आय के असमान वितरण द्वारा बचत क्षमता में वृद्धि करना और विदेशों से पूँजी का आयात करना। पर ये दोनों ही ठीक नहीं हैं। देश के सामान्य व्यक्ति की बचत क्षमता बढ़ाने के लिए उसकी आय में वृद्धि और उपभोग का संयम ही उचित मार्ग है। (भारतीय अर्थनीति- विकास की एक दिशा, 89-90; एकात्म मानववाद, 74)।

मजदूरों की भागीदारी —दीनदयाल जी का यह भी स्पष्ट मत था कि उद्योगों में पूँजीपति एवं बड़ी कंपनियों में शेयर होल्डर्स के साथ-साथ मजदूरों का भी स्वामित्व स्वीकार किया जाए और उन्हें लाभ एवं प्रबंध में भागीदार बनाया जाए। (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा, 139)। ऐसा करने पर हड़ताल-तालाबंदी की समस्या समाप्त होकर औद्योगिक शांति स्थापित हो सकेगी, श्रमिक अपनी पूरी कार्य क्षमता से मन लगा कर काम करेंगेऔर वितरण की समानता की दिशा में भी आगे बढ़ सकेंगे।

अर्थ दृष्टि व अर्थ संस्कृति

अर्थ एवं अर्थाजन के संबंध में क्या दृष्टिकोण रहे? इस बारे में भी दीनदयाल जी ने बहुत गहराई से चिंतन किया था। उनका मानना है कि मनुष्य एवं समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त मात्रा में धन का होना आवश्यक है। अनुभव यह है कि कई बार अर्थ के अभाव में व्यक्ति के मन में कुंठाएँ निराशा एवं आक्रोश पैदा हो जाता है और वह अनाचार, अत्याचार, चोरी-डकैती, लूट-खसोट एवं अन्य अनेक प्रकार के आर्थिक अपराधों में संग्लन हो जाता है। इसीलिए तो हमारे यहाँ कहा गया है कि—

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 17

'समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है।' एक अन्य दृष्टि से अर्थ के उत्पादन, वितरण व भोग में संतुलन को भी अर्थायाम कहा जा सकता है। जिस प्रकार से व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए प्राणायाम का महत्त्व है, उसी प्रकार अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए अर्थायाम का महत्त्व है। इसके लिए शिक्षा, संस्कार, दैवीसंपदयुक्त व्यक्तियों का निर्माण तथा अर्थव्यवस्था का उपयुक्त ढाँचा सभी का सहारा लेना जरूरी होता है।

बुभुक्षित: किं न करोति पापम्,
क्षीणा: नरा: निष्करुणा: भवन्ति।

(भूखा व्यक्ति कौन-सा पाप नहीं करता, भूख से पीड़ित कमजोर व्यक्ति निर्दयी हो जाता है)। इस प्रकार से अर्थ के अभाव में भी धर्म (अर्थात् समाज हित के भले काम) टिक नहीं पाता। अर्थ के अभाव के समान ही अर्थ का प्रभाव भी समाज के लिए घातक हो सकता है। अर्थ के प्रभाव से आशय है—

(1.) अर्थ के कारण स्वयं अर्थ में अथवा उसके द्वारा प्राप्त पदार्थों एवं भोग विलास में आसक्ति उत्पन्न हो जाना केवल पैसे कमाने या संचय करने की धुन लग जाना।

(2) अर्थ का ही समाज के प्रत्येक व्यवहार और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का मानदंड बन जाना 'सर्वे गुणा: कांचनमाश्रयन्ति' की उक्ति के आधार पर ही दैनिक जीवन में व्यवहार प्रारंभ हो जाना। इससे लोगों के जीवन में धनपरायणता आ जाती है, परिणामस्वरूप प्रत्येक कार्य के लिए धन की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस होने लगती है। अंततोगत्वा धन का प्रभाव प्रत्येक के जीवन में अर्थ का अभाव भी उत्पन्न कर देता है।

अर्थायाम— अत: अर्थ के अभाव एवं अर्थ के प्रभाव दोनों से बचना चाहिए। इसके लिए दीनदयाल जी ने अर्थायाम नाम से एक नई संकल्पना दी है। उनके अनुसार, 'समाज से अर्थ के प्रभाव व अभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है।' एक अन्य दृष्टि से अर्थ के उत्पादन, वितरण व भोग में संतुलन को भी अर्थायाम कहा जा सकता है। जिस प्रकार से व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए प्राणायाम का महत्त्व है, उसी प्रकार अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए अर्थायाम का महत्त्व है। इसके लिए शिक्षा, संस्कार, दैवीसंपदयुक्त व्यक्तियों का निर्माण तथा अर्थव्यवस्था का उपयुक्त ढाँचा सभी का सहारा लेना जरूरी होता है। (भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा,18-19, एकात्म मानववाद, 35-36; पं. दीनदयाल उपाध्याय, 4)

मानवीय उद्देश्य केंद्रित अर्थव्यवस्था— दीनदयाल जी का मानना था कि अर्थव्यवस्था का निर्माण एवं संचालन मानवीय उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। पश्चिमी अर्थव्यवस्था में (पूँजीवादी एवं समाजवादी दोनों में) मौद्रिक मूल्य एवं धनार्जन को ही अत्यंत महत्त्व का स्थान प्राप्त है। इसीलिए उनका नीतिगत नारा है, 'कमाने वाला खाएगा।' दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं की दृष्टि तो समान है, अंतर केवल राष्ट्रीय आय वितरण में प्राप्त हिस्से को लेकर है।

साम्यवादी अर्थव्यवस्था के अनुसार उत्पादन में मुख्य भूमिका श्रम की होती है, अत: देश के कुल उत्पादन व उपभोग में मुख्य हिस्सा भी श्रमिकों को ही मिलना चाहिए। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका पूँजी व उद्यम की होती है, अत: देश के कुल उत्पादन व उपभोग में मुख्य हिस्सा पूँजीपति व उद्यमी को मिलना चाहिए। किंतु ये दोनों विचार आधे-अधूरे एवं अमानवीय हैं। अत: भारतीय चिंतन

ने मानवीय दृष्टिकोण से अपने लिए जो दिशा-सूत्र (नारे) निश्चित किए हैं, वे हैं. 'कमाने वाला खिलाएगा' तथा 'जो जन्मा सो खाएगा'। इसका अर्थ है कि कमाने वाला परिवार में बच्चे, बूढ़े, रोगी, अपाहिज, अतिथि आदि सब के भरण-पोषण की चिंता करेगा और देश में अभावग्रस्त, निर्धन-निर्बल व्यक्ति के निर्वाह का भी समाज का दायित्त्व होगा, इसी में से आगे चलकर 'अन्त्योदय' के लिए आर्थिक नीति बनाने की दिशा सामने आयी। और अधिक विचार करने पर यह भी ध्यान आया कि यदि कमाने वाला खिलायेगा और जन्मा सो खायेगा, इतना ही कहकर छोड़ दिया तो इससे मुफ्तखोरी और काम न करने की प्रवृत्ति पनपने का खतरा हो सकता है, अत: इस नारे के साथ 'खाने वाला कमाएगा' भी जोड़ा गया। इस समूचे विचार को ध्यान में रखकर ही हमें भारत की अर्थरचना करनी होगी। इसी में से रोजगार-परक उत्पादन प्रणाली का ढाँचा खड़ा होगा।

दीनदयाल जी का कहना था कि हमें आर्थिक प्रश्नों पर विचार करते समय नैतिकता एवं आर्थिकेतर कारकों का भी विचार करना चाहिए। (पं. दीनदयाल उपाध्याय खंड 4, पृ 37, एकात्म मानववाद, 71-77)।

संयमित उपभोग— दीनदयाल जी ने अपनी दूरदृष्टि से इस बात को भी भली प्रकार समझ लिया था कि हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीम भोग नहीं संयमित उपभोग ही होना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आज हम उपभोक्तावाद पर आधारित उपभोग की जिस शैली एवं तौर-तरीकों को अपनाते जा रहे हैं उसका पर्यावरण एवं सामजिक दोनों ही दृष्टियों से लंबे समय तक टिक पाना संभव नहीं लगता। इतना ही नहीं यह सबके लिए धारणक्षम मानव विकास की संभावनाओं को ही कमजोर किये जा रहा है। यह इस विश्वास को इंगित करता है कि सीमित-संयमित, धारणक्षम व व्यवहारक्षम उपयोगशैली एवं जीवनशैली अपनाकर ही धारणक्षम मंगलकारी विकास के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इसके अलावा, दीनदयाल जी का एक और महत्त्वपूर्ण दिशा-संकेत यह भी है कि समाज को सुखी एवं संतुष्ट रखना हो तो ग्राहकाभिमुख वितरण व्यवस्था और पर्याप्त मात्रा में वितरणाभिमुख उत्पादन होना चाहिए। (पं. दीनदयाल उपाध्याय विचारदर्शन, खंड 4, पृ0.37)।

हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीम भोग नहीं संयमित उपभोग ही होना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आज हम उपभोक्तावाद पर आधारित उपभोग की जिस शैली एवं तौर-तरीकों को अपनाते जा रहे हैं उसका पर्यावरण एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से लंबे समय तक टिक पाना संभव नहीं लगता। इतना ही नहीं यह सबके लिए धारणक्षम मानव विकास की संभावनाओं को ही कमजोर किये जा रहा है।

द्रव्य आस्तिकता से बचाव— दीनदयाल जी 'द्रव्य आस्तिकता' के दोष से अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक योजनाओं को बचाए रखने पर जोर देते थे। 'द्रव्य आस्तिकता' से आशय है केवल अधिक पैसा खर्च करने से अधिक प्रगति होती है, यह विश्वास और उसी दृष्टि से किया जाने वाला द्रव्य का मापतौल। (पं. दीनदयाल उपाध्याय, विचार दर्शन, खंड 4, पृ.105)।

साध्य साधन विवेक— इतना ही नहीं, केन्ज का यह विचार कि मंदी व बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकारी निवेश, खर्च में वृद्धि व घाटे का बजट बनना चाहिए, दीनदयाल जी को यह कतई मान्य नहीं था। उनका कहना था कि हमें यह भी देखना होगा कि

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 19

हमें यह भी देखना होगा कि सरकारी निवेश व खर्च किन कामों पर हो रहा है। इस दृष्टि से साध्य-साधन विवेक का भी ध्यान रखना होगा। अर्थरचना ऐसी होनी चाहिए जिसमे कार्य की मूल प्रेरणा अनियंत्रित प्रतियोगिता अथवा लाभ की वृत्ति न होकर कर्तव्य सुख हो। व्यक्ति को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उसके द्वारा किए गए श्रम का प्रतिदान नहीं वरन् उसके योगक्षेम की व्यवस्था मानी जाए। इसके लिए अर्थचक्र को समाजशास्त्र एवं धर्मशास्त्र (नीतिशास्त्र) के अनुकूल नियोजित करना आवश्यक है।''

सरकारी निवेश व खर्च किन कामों पर हो रहा है। इस दृष्टि से साध्य-साधन विवेक का भी ध्यान रखना होगा। वे एक ऐसी अर्थरचना के पक्षधर थे जिसमें कार्य की मूल प्रेरणा अनियंत्रित प्रतियोगिता अथवा लाभ की वृत्ति न होकर कर्तव्य सुख हो। व्यक्ति को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उसके द्वारा किए गए श्रम का प्रतिदान नहीं वरन् उसके योगक्षेम की व्यवस्था मानी जाए। इसके लिए अर्थचक्र को समाजशास्त्र एवं धर्मशास्त्र (नीतिशास्त्र) के अनुकूल नियोजित करना आवश्यक है। कुल मिलाकर, वे उपभोक्तावाद, स्पर्धावाद, वर्ग संघर्ष पर आधारित अर्थरचना को ठीक नहीं मानते।

अर्थ संस्कृति—उनके अनुसार मनुष्य की प्राकृत भावनाओं का संस्कार करके उसमें प्रकृति की मर्यादा के प्रकाश में अधिकाधिक उत्पादन, सामान वितरण एवं संयमित उपभोग की प्रवृति पैदा करना ही आर्थिक क्षेत्र में सांस्कृतिक कार्य है। वे देश व समाज को अर्थ विकृति से हटाकर अर्थ संस्कृति की दिशा में ले जाना चाहते थे। आज पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति या तो मात्र अर्थपरायण बनकर रह गया है या फिर अपने निजी व्यक्तित्व को नष्ट कर वह एक नंबर बनता जा रहा है। दूसरी ओर साम्यवादी अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की अपनी रुचि, प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रेरणा व पहल को समाप्त कर उसे जेल के एक कैदी के समान बना दिया गया है। इस प्रकार दोनों ही व्यवस्थाओं में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को खोता जा रहा है। अत: हमें ऐसी अर्थरचना बनानी होगी जिसमें व्यक्ति को गरिमापूर्ण स्थान मिले और वह पुरुषार्थशील बनकर राष्ट्र के सार्वजनीय मंगल में अपनी पूर्णक्षमता के साथ योगदान कर सके।

गौरवशाली भारत का निर्माण— अंत में मैं दीनदयाल जी की आकांक्षा को उन्ही के शब्दों में प्रस्तुत करना चाहता हूँ, ''विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी संपूर्ण परंपरा के आधार पर हम ऐसा भारत निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली होगा, जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तित्व का विकास करता हुआ संपूर्ण मानव ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्म का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा।'' (एकात्म मानववाद, 85)।

लेखक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं।

(प्रस्तुत आलेख हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला की दीनदयाल उपाध्याय पीठ द्वारा आयोजित ऑनलाईन व्याख्यान माला में दिए गए व्याख्यान पर आधारित है।)

सामाजिक सरोकारों से कटकर पत्रकारिता कितनी नुकसानदेह हो सकती है यह आज की पत्रकारिता को देखकर समझ में आता है। मीडिया का एक वर्ग आज अपने लाभ के लिए देशविरोधी शक्तियों से भी समझौता करने में संकोच नहीं करता। राजनीतिक दलों तथा कुछ छुपी हुई वैश्विक ताकतों को लाभ पहुँचाने के लिए झूठी खबरें छापने का चलन आजकल जोरों पर है। चुनाव के दौरान छपने वाली 'पेड न्यूज' का मुद्दा करीब दो दशक से चर्चा में है। समाचार पत्र के प्रथम पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक और न्यूज चैनल की पहली खबर से लेकर अंतिम खबर तक नकारात्मकता ही छायी रहती है। वर्तमान समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और न्यूज चैनलों एवं वेब पोर्टलों को देखकर लगता है कि आज देश में सिर्फ नकारात्मक घटनाएँ ही घट रही हैं और समाज में कुछ भी सकारात्मक और रचनात्मक नहीं हो रहा है। समाज की उजली तस्वीर मीडिया से गायब है। ऐसे समय में दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता और उनके द्वारा रचित साहित्य हमें नई दिशा प्रदान करता है। दीनदयालजी ने सार्वजनिक जीवन के प्रति सचेत, सुरुचिपूर्ण एवं संस्कारक्षम पत्रकारिता को अपने संबद्ध कार्यकर्ताओं व समाचार पत्रों के माध्यम से विकसित करने का प्रयत्न किया।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 21

प्रो. प्रमोद कुमार

मूल्यपरक पत्रकारिता के पुरोधा दीनदयाल उपाध्याय

'नवभारत टाइम्स' और 'जनसत्ता' जैसे प्रतिष्ठित हिंदी दैनिक समाचार पत्रों में संपादकीय विभाग का दशकों तक नेतृत्व करने के बाद भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के कुलपति का दायित्व निभाने वाले वरिष्ठ पत्रकार एवं स्तंभकार श्री अच्युतानंद मिश्र दीनदयाल उपाध्याय के साथ अपने पत्रकारीय संबंधों के संबंध में बताते हुए एक घटना का उल्लेख करते हैं। बात नवंबर 1963 की है। अच्युतानंदजी और स्व.भानुप्रताप शुक्ल उन दिनों लखनऊ में 'पांचजन्य' के संपादन का कार्य देखते थे। उन्होंने प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी एवं वरिष्ठ लेखक जो बाद में 'पांचजन्य' के संपादक भी बने, पं. वचनेश त्रिपाठी से तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के जन्मदिवस पर एक व्यंग्यपूर्ण कविता लिखवाई। कविता का शीर्षक था ''सौ वर्ष की उम्र हो तेरी जवाहरलाल''। कविता 'पांचजन्य' के आवरण पृष्ठ पर छपी। उन्हें जानकारी मिली की दीनदयालजी लखनऊ में हैं। प्रिंटिंग प्रेस में जैसे ही समाचार पत्र छपना प्रारंभ हुआ, उसकी पहली प्रति लेकर दोनों साइकिल से दीनदयालजी के पास पहुँचे। उम्मीद थी कि दीनदयालजी उस अंक को देखकर

शाबासी देंगे। दीनदयालजी ने अंक देखा। कविता पढ़ी और कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद पूछा कि इस अंक की छपाई कितनी देर पहले शुरू हुई है। अच्युताजी ने कहा कि करीब आधा घंटा पहले। उन्होंने कहा कि दौड़कर प्रेस जाओ और इसकी छपाई तुरंत रुकवाकर आवरण पृष्ठ पर छपी कविता को हटा दो। इस कविता में प्रधानमंत्री के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वे शिष्टता की श्रेणी में नहीं आते। हमें अपने देश के प्रधानमंत्री के लिए अमर्यादित शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए'' (मिश्र, 2020)। यह घटना वर्तमान मीडिया के लिए एक आइना है।

संयमित भाषा के पक्षधर

श्री भानुप्रताप शुक्ल बाद में 'पांचजन्य' के संपादक बने। लेखक का उनसे परिचय 1988 में आया। उनसे अक्सर दिल्ली के बंगाली मार्केट स्थित उनके आवास पर मिलना होता था। पत्रकारिता की चर्चा करते हुए वे बताया करते थे कि, 'पांचजन्य' और उसके संपादकीय विभाग में काम करने वाले लोगों से दीनदयालजी के संबंध दिखते नहीं थे, सब उन्हें महसूस करते थे। उनका सान्निध्य बड़ा ही मृदु और शिक्षाप्रद होता था। वे आते तो पत्रकारिता पर चर्चा होती, खबर कैसे बनानी, शीर्षक कैसे लगाना आदि से लेकर सभी छोटी-बड़ी सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें होती थी। हम उनसे बहस भी करते थे। एक बार दीनदयालजी लखनऊ आए। उस दौरान संत फतेह सिंह किसी विषय पर आमरण अनशन कर रहे थे। उस संबंध में प्रकाशित होने वाले समाचार में हमने शीर्षक दिया 'अकाल तख्त के काल'। उन्होंने यह शीर्षक हटवा दिया और समझाया कि सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे परस्पर कटुता बढ़े तथा आपसी सहयोग और साथ काम करने की संभावना ही समाप्त हो जाए। अपनी बात को दृढ़ता से कहने का अर्थ कटुतापूर्वक कहना नहीं होना चाहिए।''

'पांचजन्य' और उसके संपादकीय विभाग में काम करने वाले लोगों से दीनदयालजी के संबंध दिखते नहीं थे, सब उन्हें महसूस करते थे। उनका सान्निध्य बड़ा ही मृदु और शिक्षाप्रद होता था। वे आते तो पत्रकारिता पर चर्चा होती, खबर कैसे बनानी, शीर्षक कैसे लगाना आदि से लेकर सभी छोटी-बड़ी सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें होती थी।

मर्यादा का पालन

'ऑर्गेनाइजर' के पूर्व संपादक स्व. केवल रतन मल्कानी, जिन्होंने 1950 में 'ऑर्गेनाइजर' के संपादक का दायित्व संभाला, बताया करते थे, ''जब वर्ष 1968 में तीन दिन से भी कम समय में तत्कालीन केंद्र सरकार ने हरियाणा, पश्चिम बंगाल और पंजाब की गैर-कांग्रेसी सरकारें गिरा दी तो 'ऑर्गेनाइजर' ने एक व्यंग्यचित्र छापा, जिसमें तत्कालीन गृहमंत्री श्री चव्हाण को लोकतंत्र के बैल को काटते हुए दर्शाया गया। बहुत से लोगों को यह अतिवाद लगा। दीनदयालजी की प्रतिक्रिया थी कि चाहे व्यंग्यचित्र ही क्यों न हो, गो-हत्या का यह दृश्य मन को धक्का पहुँचाने वाला है।'' इसका मतलब है कि दीनदयालजी व्यंग्यचित्रों के माध्यम से भी मर्यादा का पालन करने के पक्षधर थे। यह बात भी आज के पत्रकारों के लिए एक सबक है।

समाचार लेखन में निष्पक्षता व शिष्टता

'पांचजन्य' के पूर्व संपादक श्री महेंद्र कुलश्रेष्ठ 1953 का एक प्रसंग साझा करते हैं। वे बताते हैं,

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 23

दीनदयालजी स्वयं कभी किसी समाचार पत्र-पत्रिका के औपचारिक संपादक अथवा संवाददाता नहीं रहे, कभी किसी समाचार पत्र के संपादक के रूप में उनका नाम प्रकाशित नहीं हुआ, कभी किसी कार्यालय में उनके लिए कुर्सी नहीं लगी, पत्रकारिता के किसी विद्यालय से उन्होंने कोई डिग्री/डिप्लोमा नहीं लिया, किसी समाचार पत्र या पत्रिका के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने कभी सरकारी मान्यता नहीं ली, कभी किसी पत्र से लेखन का कोई पारिश्रमिक नहीं लिया, परंतु फिर भी वे असंख्य पत्रकारों के लिए प्रेरणापुंज, मार्गदशक और गुरु समान थे और हैं। अनेक संपादकों को उनका सजीव सान्निध्य एवं सहचर्य प्राप्त हुआ।

''जुलाई 1953 में 'पांचजन्य' का 'अर्थ' पर केंद्रित विशेषांक प्रकाशित हुआ। आर्थिक विषयों पर बहुत मेहनत से सामग्री संकलित की गई। उस अंक की समीक्षा दीनदयाल जी ने स्वयं लिखकर भेजी। उसमें उन्होंने लिखा कि सामग्री के चयन में निष्पक्षता और पूर्णता रहनी चाहिए। पंचवर्षीय योजना में केवल वामपंथी नेता श्री रणदिवे की आलोचना को क्यों स्थान दिया गया, जबकि अन्य दलों की आलोचना का समावेश नहीं है। इसमें समग्रता का अभाव है। पत्रकारिता में शिष्टाचार की अवहेलना नहीं होनी चाहिए। संपादकीय में श्री अशोक मेहता की शासन के साथ सहयोगी की नीति की आलोचना करते हुए 'मूर्खतापूर्ण' शब्द के स्थान पर यदि किसी सौम्य शब्द का प्रयोग किया गया होता तो 'पांचजन्य' की प्रतिष्ठा के अनुकूल होता''(शर्मा, 2011, पृष्ठ 34)।

भाषा का संयम

उपर्युक्त प्रसंगों से स्पष्ट है कि दीनदयालजी पत्रकारिता में शिष्टाचार की मर्यादा का उल्लंघन स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। वे विपक्ष में रहते हुए भी देश के प्रधानमंत्री, गृहमंत्री आदि के विरुद्ध असम्मानजनक टिप्पणी स्वीकार नहीं करते थे। दीनदयालजी द्वारा स्थापित इन मर्यादाओं को जब हम वर्तमान संदर्भ में देखते हैं तो यकायक हमारे सामने कुछ ऐसे जुमले आ जाते हैं, जिनका प्रयोग पिछले कुछ दिनों में खूब देखा गया। 'मौत का सौदागर', 'नीच आदमी', 'यमराज', 'रावण', 'गंदी नाली का कीड़ा', 'गंगू तेली', 'गुंडा', 'बंदर' 'रेबीज पीड़ित', 'वायरस', 'भस्मासुर', आदि शब्द प्रधानमंत्री के बारे में प्रयोग हुए''(पी.टी.आई., 2017)। संयोग देखिए कि जिस पार्टी के नेताओं के विरुद्ध मर्यादाहीन शब्दों का प्रयोग करने से दीनदयालजी अपने समर्थकों एवं उनका सान्निध्य प्राप्त करने वाले पत्रकारों को रोकते थे, आज उसी पार्टी के नेता दीनदयालजी की पार्टी के वरिष्ठ नेताओं के विरुद्ध अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करने में सारी सीमाएँ लांघते हुए दिखायी दे रहे हैं।

संपादकों के संपादक

यह सच है कि दीनदयालजी स्वयं कभी किसी समाचार पत्र-पत्रिका के औपचारिक संपादक अथवा संवाददाता नहीं रहे, कभी किसी समाचार पत्र के संपादक के रूप में उनका नाम प्रकाशित नहीं हुआ, कभी किसी कार्यालय में उनके लिए कुर्सी नहीं लगी, पत्रकारिता के किसी विद्यालय से उन्होंने कोई डिग्री/डिप्लोमा नहीं लिया, किसी समाचार पत्र या पत्रिका के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने कभी सरकारी मान्यता नहीं ली, कभी किसी पत्र से लेखन का कोई पारिश्रमिक नहीं लिया, परंतु फिर भी वे असंख्य पत्रकारों के लिए प्रेरणापुंज, मार्गदशक और गुरु

समान थे और हैं। अनेक संपादकों को उनका सजीव सान्निध्य एवं सहचर्य प्राप्त हुआ। वे औपचारिक रूप से 'पांचजन्य' एवं 'ऑर्गेनाइजर' में नियमित स्तंभ लेखक थे। 'पांचजन्य' में वे 'पराशर' नाम से 'विचारवीथि' और 'ऑर्गेनाइजर' में 'पॉलिटिकल डायरी' स्तंभ लिखते थे। यही कारण था कि कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादक उन्हें सहज ही अपना मित्र एवं मार्गदर्शक मानते थे।

उन्नीस सौ पचास के दशक से दीनदयालजी का निकट सान्निध्य प्राप्त करने वाले 'पांचजन्य' के पूर्व संपादक स्व. देवेंद्र स्वरूप अग्रवाल दीनदयालजी के पत्रकारिता से संबंधों का विस्तार से उल्लेख किया करते थे। वे बताते थे कि उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सहप्रांत प्रचारक रहते हुए दीनदयाल जी द्वारा 1946 में 'सम्राट चन्द्रगुप्त' और 1947 में 'जगद्गुरु श्री शंकराचार्य' पुस्तकें लिखने के बाद उनके लेखन की धाक जम चुकी थी। उनके लेखन की उसी शृंखला में से विचार उत्पन्न हुआ कि एक मासिक पत्र प्रारंभ किया जाए। उसका एक कारण यह भी था कि उस समय राष्ट्रवादी विचारों को मुख्यधारा की पत्रकारिता में स्थान नहीं मिलता था। उसी चर्चा के परिणामस्वरूप जुलाई 1947 में 'राष्ट्रधर्म' मासिक की शुरुआत हुई। हालांकि उससे पहले दिल्ली से अँग्रेजी साप्ताहिक 'ऑर्गेनाइजर' की शुरूआत हो चुकी थी। 'ऑर्गेनाइजर' के प्रकाशन में दीनदयालजी की बहुत सक्रिय भूमिका के बारे में जानकारी मुझे नहीं है, परंतु ऐसा नहीं हो सकता कि इस संबंध में उनसे विचार-विमर्श न हुआ हो। मासिक 'राष्ट्रधर्म' प्रारंभ करने के बाद सभी के मन में विचार आया कि एक माह का समय बहुत अधिक होता है, इसलिए कम से कम एक साप्ताहिक पत्र भी होना चाहिए। उसी चर्चा के बाद 1948 में मकर संक्रांति के दिन 'पांचजन्य' की शुरुआत हुई। औपचारिक रूप से 'राष्ट्रधर्म' के संपादक अटल बिहारी वाजपेयी और राजीव लोचन अग्निहोत्री थे और 'पांचजन्य' के संपादक अटल जी थे। दोनों ही दीनदयाल जी को अपना गुरु मानते थे। इस प्रकार यदि कहें कि दीनदयालजी संपादकों के संपादक थे तो गलत नहीं होगा। बाद में दीनदयालजी की प्रेरणा से एक हिंदी दैनिक 'स्वदेश' का भी प्रकाशन प्रारंभ हुआ। जब संघ पर प्रथम प्रतिबंध लगा तो उस दौरान दीनदयाल जी ने 'हिमालय' और 'राष्ट्रभक्त' नाम से दो अन्य प्रकाशन प्रारंभ किए, परंतु वे अधिक समय तक नहीं चल सके।

वह आर्थिक अभावों का दौर था और साधन बहुत सीमित थे। इसलिए जरूरत के हिसाब से दीनदयाल जी लिखने से लेकर कंपोजिंग और मशीन चलाने तक में जुट जाते थे। यही नहीं, वे अखबार के बंडल हाथ में लेकर वितरण करने के लिए भी जाया करते थे। उनके लिए पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, मिशन थी। पद या प्रतिष्ठा का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं था।

पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, मिशन

वह आर्थिक अभावों का दौर था और साधन बहुत सीमित थे। इसलिए जरूरत के हिसाब से दीनदयाल जी लिखने से लेकर कंपोजिंग और मशीन चलाने तक में जुट जाते थे। यही नहीं, वे अखबार के बंडल हाथ में लेकर वितरण करने के लिए भी जाया करते थे (दीनदयाल उपाध्याय चित्रावली, 2017)। उनके लिए पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, मिशन थी। पद या प्रतिष्ठा का उनके लिए कोई महत्त्व नहीं था। देवेंद्र स्वरूप जी बताते हैं,

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 25

प्रतिक्षण हमारे चारों ओर अनेक घटनाएँ घटती हैं। जीवन के प्रत्येक व्यवहार से उनका संबंध रहता है, इनमें से जिन घटनाओं को हम दूसरों को बताना आवश्यक तथा उचित समझते हैं, वह समाचार है। जिस समाचार का सार्वजनिक महत्त्व है, जो व्यक्तिगत अथवा कुटुंब मात्र की रुचि और चिंता का विषय न हो, अखबारों के लिए खबर बन जाता है। समाचार और साहित्य में मूल अंतर यही है कि समाचार मुख्यतः दूसरों की घटी और कृति से संबंध रखता है, जबकि साहित्य प्रधानतः आत्माभिव्यक्ति है। वस्तुगतता समाचार का मुख्य गुण है, किंतु अनगिनत घटनाओं में से समाचार संकलनकर्ता कुछ को ही रिपोर्ट करता है।

''दीनदयालजी की पत्रकारिता का वास्तविक अनुभव मुझे 1951 के अंत में लखनऊ पहुँचने पर हुआ। तब भारतीय जनसंघ नया-नया स्थापित हुआ था। दीनदयालजी को उत्तर प्रदेश ईकाई के महामंत्री का दायित्व मिला था। मुझे प्रयाग से जनसंघ के प्रांतीय कार्यालय में प्रचार का काम संभालने के लिए भेजा गया था। दीनदयालजी महामंत्री के नाते प्रवास करके लखनऊ वापस आते तो थोड़ी देर अमीनाबाद में जनसंघ कार्यालय में रहकर सदर बाजार में 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन पहुँच जाते। उन दिनों 'राष्ट्रधर्म' मासिक व 'पांचजन्य' साप्ताहिक के साथ 'स्वदेश' दैनिक भी प्रकाशित होता था। दीनदयालजी वहाँ आते तो संपादक मंडल एकत्र हो जाता। चाय के प्याले पर प्रवास के अनुभव सुनाते, चुटकुले, हंसी-मजाक चलते। राष्ट्रीय घटनाचक्र पर चर्चा होती, तो विश्लेषण करते, भावी संभावनाओं को टटोलते हुए बहस छिड़ जाती। उनके शब्दों में भर्त्सना नहीं पारिवारिक आत्मीयता होती थी।

एक दिन दीनदयालजी ने मुझे कहा कि कभी-कभी 'स्वदेश' में कुछ लिखा करो। चुनाव प्रचार की आवश्यकता थी कि जनसंघ के प्रदेश महामंत्री और प्रवक्ता होने के नाते दीनदयाल जी के कार्य को जनता के सामने लाया जाए, उनके बारे में एक परिचयात्मक लेख लिखने के लिए जब मैंने उनसे उनके बारे में कुछ जानना चाहा तो उन्होंने अपने सहज अंदाज में कहा, 'अरे, किस चक्कर में पड़ते हो, इसके बिना ही काम चल जाएगा।' पर मैंने अन्यों से थोड़ी बहुत जानकारी लेकर लेख लिख ही डाला। हालांकि, इस पर बाद में वे नाराज हुए।''

पत्रकारिता पर दिशाबोधक लेख

दीनदयाल जी की पत्रकारिता दृष्टि को समझने के लिए उनके द्वारा बहुभाषी संवाद समिति 'हिन्दुस्थान समाचार' की 15वीं वर्षगाँठ के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के लिए लिखा गया एक आलेख महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। वह आलेख वैसे तो संक्षिप्त है, परंतु है बहुत महत्त्वपूर्ण और दिशाबोधक। उस आलेख से दीनदयाल जी की पत्रकारिता को लेकर जो दृष्टि थी, उसका आभास मिलता है। वह आलेख ज्यों का त्यों यहाँ प्रस्तुत है—

''प्रतिक्षण हमारे चारों ओर अनेक घटनाएँ घटती हैं। जीवन के प्रत्येक व्यवहार से उनका संबंध रहता है, इनमें से जिन घटनाओं को हम दूसरों को बताना आवश्यक तथा उचित समझते हैं, वह समाचार है। जिस समाचार का सार्वजनिक महत्त्व है, जो व्यक्तिगत अथवा कुटुंब मात्र की रुचि और चिंता का विषय न हो, अखबारों के लिए खबर बन जाता है। समाचार और साहित्य में मूल अंतर यही है कि समाचार मुख्यत: दूसरों की घटी और कृति से संबंध रखता है, जबकि साहित्य प्रधानत: आत्माभिव्यक्ति

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 26

जनरुचि की तुष्टि तथा उत्पन्न जिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उसके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है। यदि उसे इस दिशा का भान नहीं रहा तो समाचार संकलन तथा वितरण में उसे सदैव कठिनाई बनी रहेगी तथा उसमें वह कोई विशेष रुचि निर्माण नहीं कर सकेगा। चुगलखोर एवं संवाददाता में अंतर है। चुगली जनरुचि का विषय हो सकती है, किंतु वह सही मायने में संवाद नहीं। संवाद को तो सत्य, शिव, सुंदर के तीनों आदर्शों को चरितार्थ करना चाहिए।

है। वस्तुगतता समाचार का मुख्य गुण है, किंतु अनगिनत घटनाओं में से समाचार संकलनकर्ता कुछ को ही रिपोर्ट करता है। सबका संकलन न तो संभव है, न आवश्यक। किसी भी दृश्य का या व्यक्ति का फोटो उनकी प्रतिच्छाया होती है, किंतु चित्रकार की तूलिका से बने चित्र में केवल वे विवरण रहते हैं, जो दर्शक को वस्तु की सही कल्पना देने के साथ उसके ऊपर वांछित प्रभाव भी कर सकें। इसी प्रकार घटना का यथार्थ वर्णन मात्र समाचार नहीं, बल्कि रुचिकर तथा जनता की जिज्ञासा को शांत करने वाला भी होना चाहिए।

जनरुचि और जन जिज्ञासा का विचार करते हुए भी संवाददाता केवल द्रष्टा और उदासीन भाव से काम नहीं करता। जनरुचि की तुष्टि तथा उत्पन्न जिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्त्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उसके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है। यदि उसे इस दिशा का भान नहीं रहा तो समाचार संकलन तथा वितरण में उसे सदैव कठिनाई बनी रहेगी तथा उसमें वह कोई विशेष रुचि निर्माण नहीं कर सकेगा। चुगलखोर एवं संवाददाता में अंतर है। चुगली जनरुचि का विषय हो सकती है, किंतु वह सही मायने में संवाद नहीं। संवाद को तो सत्य, शिव, सुंदर के तीनों आदर्शों को चरितार्थ करना चाहिए। केवल सत्य और सुंदर से काम नहीं चलेगा।

संवाददाता शिव का बराबर ध्यान रखता है, किंतु वह उपदेष्टा की भूमिका में नहीं चलता। यह यथार्थ के सहारे वाचक को शिव की ओर इस प्रकार से ले जाता है कि शिव यथार्थ बन जाता है। संवाददाता न तो शून्य में विचरता है और न कल्पना जगत् की बातें करता है, वह तो जीवन की ठोस घटनाओं को लेकर चलता है और उनमें से शिव का सृजन करता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि तथ्यगतता समाचार का प्रधान गुण होते हुए भी वह संकलन कार्य के व्यक्तित्व से अछूता नहीं रह सकता। प्रत्येक समाचार में अपनी निजी विशेषता रहनी चाहिए। भारत में समाचार जगत् में इस दृष्टि से बहुत कुछ कमी है। यहाँ के अधिकांश समाचार पत्र एक ही ढाँचे के हैं। संपादकीय तथा एक-दो समाचारों को छोड़कर सब पत्र एक से हैं। फलतः सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण काम करने वाले भी आवश्यक नहीं समझते कि वे एकाधिक समाचार पत्र पढ़ें। किसी भी एक समाचार पत्र से उनका काम चल जाता है। भारत के समाचार पत्रों का अपना कोई निजी व्यक्तित्व नहीं विकसित हुआ है।

इस स्थिति का मुख्य कारण है कि सभी समाचार पत्रों का स्रोत एक ही है-प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया, जो 'रायटर' की भारतीय शाखा 'एसोसिएटिड प्रेस ऑफ इंडिया' का रूपांतर मात्र है। सरकारी सूचना विभाग ही इन पत्रों के समाचार के मुख्य आधार हैं, पत्रों के

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 27

निजी संवाददाता नहीं के बराबर हैं। बहुधा तो एक ही संवाददाता कई-कई पत्रों को समाचार भेजता है। जहाँ अलग-अलग संवाददाता हैं भी, वहाँ सभी संवाददाता प्राय: एक ही संवाद भेजते हैं। कारण, किसी भी घटना के संवाद मूल्य के संबंध में अधिकांश संवाददाताओं की घिसी-पिटी धारणाएँ हैं और यदि किसी संवाददाता ने नए ढंग का समाचार भेजा भी तो समाचार संपादक अपनी लीक छोड़ने को तैयार नहीं। फलत: स्वराज्य के बाद भी हमने पत्रकारिता के क्षेत्र में कोई नया विकास नहीं किया है।

संवाद-जगत् में राजनीतिक नेताओं और संस्थाओं का प्रभाव, उनमें भी राजकर्ताओं का तो एक प्रकार से सर्वस्वी वर्चस्व हो गया है। यह भारतीय राष्ट्रजीवन की धारणा के प्रतिकूल है। राजनीति के अतिरिक्त भी क्षेत्र हैं, जिनमें जनता की रुचि है, किंतु उस ओर ध्यान नहीं जाता। यदि कहीं जाता भी है तो अपराध या दुर्घटनाओं के समाचार की ओर। साहित्य, संस्कृति, धर्म इन क्षेत्रों के समाचार तो यत्किंचित् ही मिलेंगे। विदेशी समाचारों का भी हमारे यहाँ बहुत प्रभुत्व है। अर्जेंटीना में हुई रेल दुर्घटना को हमारे यहाँ समाचार-पत्रों में स्थान मिल जाएगा, किंतु जगद्गुरु शंकराचार्य का यदि कोई कार्यक्रम नगर में भी हो तो संवाद योग्य नहीं समझा जाएगा। हाँ, 'रायटर' से प्राप्त होने के कारण पोप या किसी विदेशी पंथ प्रमुख के समाचार अवश्य छप जाएंगे। अकाली नेता मास्टर तारा सिंह के वक्तव्य संवाद योग्य समझे जाते हैं, क्योंकि वे राजनीति में भाग लेते हैं, किंतु शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के नेताओं के अन्य वक्तव्यों का कोई मूल्य नहीं।

संवाद मूल्य संबंधी इस धारणा के अतिरिक्त संवाद की भाषा भी महत्त्व का विषय है। अभी तक हमारा कामकाज अँग्रेजी में होता है। संवाद-समितियाँ अँग्रेजी में चलती हैं, देशी भाषाओं के पत्र भी अँग्रेजी से अनुवाद के सहारे काम चलाते हैं। फलत: भाव की अभिव्यक्ति तो हो ही नहीं पाती। अनेकदा भाव के स्थान पर भाषा का अत्यधिक महत्त्व हो जाता है। अँग्रेजी में विचार करने वाले भारतीय भावों को ग्रहण नहीं कर पाते, जो ग्रहण भी करते हैं, उसे अँग्रेजी में व्यक्त नहीं कर पाते। जितने समाचार संकलित होते हैं, वे सब के सब अँग्रेजी पत्रों तथा उनके पाठकों को ध्यान में रखकर होते हैं और हिंदी पत्र या दूसरी भाषाओं के पत्र को वे ही समाचार दिए जाते हैं। प्रत्युत 'पी.टी.आई.' के अनुसार तो उनको दूसरे दर्जे की सेवा, जो कुछ सस्ती है, दी जाती है। इनमें मूल समाचारों को और भी संक्षिप्त कर दिया जाता है। इन समाचार-पत्रों का संपादक अनुवादक से अधिक कुछ नहीं बन पाता। अनेक बार तो भारतीय भाषाओं में कही गयी बातों का संवाददाता अँग्रेजी में अनुवाद करता है और फिर

संवाद की भाषा भी महत्त्व का विषय है। अभी तक हमारा कामकाज अँग्रेजी में होता है। संवाद-समितियाँ अँग्रेजी में चलती हैं, देशी भाषाओं के पत्र भी अँग्रेजी से अनुवाद के सहारे काम चलाते हैं। फलतः भाव की अभिव्यक्ति तो हो ही नहीं पाती। अनेकदा भाव के स्थान पर भाषा का अत्यधिक महत्त्व हो जाता है। अँग्रेजी में विचार करने वाले भारतीय भावों को ग्रहण नहीं कर पाते, जो ग्रहण भी करते हैं, उसे अँग्रेजी में व्यक्त नहीं कर पाते। जितने समाचार संकलित होते हैं, वे सब के सब अँग्रेजी पत्रों तथा उनके पाठकों को ध्यान में रखकर होते हैं और हिंदी पत्र या दूसरी भाषाओं के पत्र को वे ही समाचार दिए जाते हैं।

उस अनुवाद का संपादक के द्वारा भारतीय भाषाओं में अनुवाद होता है। इस दोहरे अनुवाद में मूल की क्या गति होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। मद्रास का हेमिल्टन ब्रिज जैसे बरबरस ब्रिज बन गया, उसी प्रकार इन वक्तव्यों का आए दिन रूप बिगड़ता रहता है।

आवश्यकता है कि समाचार क्षेत्र में विद्यमान इन विविध प्रकार के एकाधिपत्यों को तोड़ा जाए। विदेशी समाचार, अँग्रेजी भाषा, राजकर्ता, राजनीति, एक ही समाचार समिति, सरकारी सूचना विभाग का समाचार जगत् पर लगभग एकाधिकार है। जब तक यह समाप्त नहीं होता हम इस क्षेत्र विकास नहीं कर पाएंगे।

'हिन्दुस्थान समाचार' ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से समाचार देने का एक स्तुत्य प्रयास किया है। मैं आशा करता हूँ कि इसके समाचारों में हिन्दुस्थान की अभिव्यक्ति होगी तभी उसका नाम सार्थक होगा तथा विद्यमान अभाव को दूर करने में उसे सफलता मिलेगी'' (शर्मा, 2011)।

भारतीय पत्रकारिता के संबंध में दीनदयालजी का यह आलेख निश्चित रूप से दिशाबोधक है और भारतीय पत्रकारिता का स्वरूप कैसा होना चाहिए इसका एक खाका प्रस्तुत करता है। करीब 47 वर्ष पूर्व लिखा गया यह लेख आज भी प्रासंगिक है। इसमें भाषा की शिष्टता, समाचार क्या है, समाचार का महत्त्व, समाचार और साहित्य में अंतर, समाचार में तथ्यगतता, समाचार एजेंसी की समस्या, समाचार संपादकों की जड़ता, मीडिया में राजनीतिक नेताओं का प्रभाव, राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को नजरअंदाज करना, संवाद की भाषा, संपादकों पर सवार अँग्रेजियत, दोहरे अनुवाद की समस्या, समाचार क्षेत्र में विद्यमान विविध प्रकार के एकाधिपत्य, भारतीय भाषाओं मे समाचार देने की आवश्यकता और समाचारों में भारत की अभिव्यक्ति आदि बिंदुओं की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है।

दीनदयाल साहित्य संसार

'पांचजन्य' एवं 'ऑर्गेनाजर' में नियमित स्तंभ लिखने के अलावा दीनदयालजी ने लगभग एक दर्जन पुस्तकें भी लिखी। उन पुस्तकों में उनकी विलक्षण साहित्यक प्रतिभा का दर्शन होता है। उनके द्वारा लिखित प्रमुख पुस्तकों में शामिल हैं सम्राट चन्द्रगुप्त (1946), जगद्गुरु श्री शंकराचार्य (1947), अखंड भारत क्यों? (1952), भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा (1958), राष्ट्रजीवन की दिशा (1971), राष्ट्रचिंतन (विक्रमी संवत् 2029), स्वतंत्रता की साधना और सिद्धि, हिंदू संस्कृति की विशेषता, द टू प्लान्स (1958), पॉलिटिकल डायरी (1968), डिवैल्यूएशन (1966), विश्वासघात (1963), और इंटिग्रल ह्यूमनिज्म (1966)। वर्ष 1953 में उन्होंने 'भारतीय जनसंघ की अर्थनीति' शीर्षक से एक आलेख तैयार किया। इसके बाद 1958 में 'भारतीय अर्थनीति :

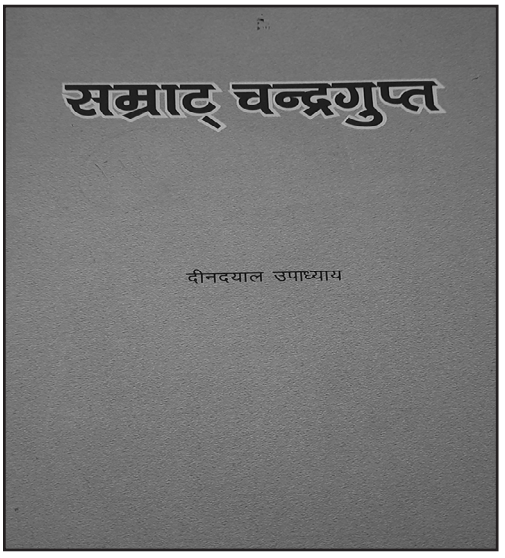

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 29

विकास की एक दिशा' शीर्षक से पुस्तक प्रकाशित की। दो पंचवर्षीय योजनाओं के मूल्यांकन और मुद्रा के अवमूल्यन पर उनके आलेख आर्थिक विचारों और आँकड़ों पर उनकी गहरी पकड़ के परिचायक हैं।

जनसंघ के राष्ट्रीय महामंत्री की जिम्मेदारी संभालने के बाद उन्होंने हिंदी के अलावा अँग्रेजी में भी लिखना प्रारंभ किया था। हालांकि वे अँग्रेजी विषय में स्नात्कोत्तर करने के लिए आगरा गए थे, परंतु प्रथम वर्ष पास करके अंतिम वर्ष की परीक्षा नहीं दे पाए थे।

दीनदयाल जी के लेखन से एक बात पूरी तरह स्पष्ट होती है कि उनकी दृष्टि समग्र थी। उन्होंने राष्ट्रजीवन के प्रत्येक क्षेत्र का समान रूप से अध्ययन-चिंतन किया। उनकी दृष्टि उदार, समन्वयवादी और गतिमान थी। एकात्म मानववाद शीर्षक से उनके पाँच प्रसिद्ध भाषण उनकी समन्वयवादी दृष्टि को प्रस्तुत करते हैं।

जनसंघ नेता के रूप में देश के विभिन्न प्रदेशों की जमीनी आर्थिक सच्चाइयों को भी दीनदयाल जी ने गहराई से देखा और समझा। देश की आर्थिक स्थिति पर उनका अध्ययन जमीनी वास्तविकताओं पर आधारित था, केवल पुस्तकीय पांडित्य पर नहीं। इसीलिए वह देश की मौलिक, आर्थिक समस्याओं और स्थितियों को गहराई से पकड़ सके। प्रारंभिक दो पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में उन्होंने जो स्तंभ लिखे वही संगठन का आर्थिक दर्शन बन गए

विलक्षण अध्ययनशीलता

दीनदयालजी की पत्रकारिता पर टिप्पणी करते हुए 'पांचजन्य' के पूर्व संपादक दीनानाथ मिश्र उनकी अध्ययनशीलता का खासतौर से उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं, ''दीनदयालजी ने कई महीनों तक आर्थिक विषयों का अध्ययन कलकत्ता के एक पुस्तकालय में जाकर किया और निरंतर आर्थिक पुस्तकें पढ़ते रहे, पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों की और भारत के प्राचीन व अर्वाचीन अर्थशास्त्रियों की भी। जनसंघ नेता के रूप में देश के विभिन्न प्रदेशों की जमीनी आर्थिक सच्चाइयों को भी उन्होंने गहराई से देखा और समझा। देश की आर्थिक स्थिति पर उनका अध्ययन जमीनी वास्तविकताओं पर आधारित था, केवल पुस्तकीय पांडित्य पर नहीं। इसीलिए वह देश की मौलिक, आर्थिक समस्याओं और स्थितियों को गहराई से पकड़ सके। प्रारंभिक दो पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में उन्होंने जो स्तंभ लिखे वही संगठन का आर्थिक दर्शन बन गए'' (शर्मा, 2011, पृष्ठ 44-45)।

अटल बिहारी वाजपेयी ही नहीं, बल्कि भारतीय जनसंघ एवं भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता लालकृष्ण आडवाणी के पत्रकारीय जीवन के पीछे भी किसी न किसी तरह दीनदयालजी की ही प्रेरणा थी। अटलजी लंबे समय तक दीनदयाल जी के साथ ही अपनी विविध पत्रकारीय भूमिकाएँ निभाते रहे। जब लालकृष्ण आडवाणी 'ऑर्गेनाइजर' के साथ पत्रकार के रूप में जुड़े तब उन्होंने दीनदयालजी पर नियमित रूप से लिखने का आग्रह बढ़ा दिया। दीनदयालजी अक्सर प्रवास पर रहते थे। एक बार आडवाणीजी ने उनसे आग्रह किया कि 'ऑर्गेनाइजर' में प्रकाशित अपने स्तंभ 'पॉलिटिकल डायरी' में वे प्रवास के अपने अनुभव तथा व्यक्तिगत घटनाओं को लिखें। दीनदयालजी ने एक-दो बार तो ऐसा किया, परंतु अपने स्तंभ में अपनी ही चर्चा करें यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने ऐसा करना बंद कर दिया। यह सत्य है कि दीनदयालजी,

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 30

सर्वश्री दीनदयाल उपाध्याय व अटल बिहारी वाजपेयी व अन्य विचार मंथन करते हुए

अटलजी और आडवाणीजी की पत्रकारीय प्रेरणा से देशभर में सैंकड़ों लोगों ने पत्रकारिता को अपने जीवन का मिशन बना लिया। उस दौर में मिशनरी पत्रकारिता के रूप में केवल रतन मलकानी, बालेश्वर अग्रवाल, एन.बी. लेले, यादवराव देशमुख, देवेंद्र स्वरूप अग्रवाल, डॉ. नंद किशोर त्रिखा व अच्युतानंद मिश्र सरीखे पत्रकारों को गिना जाता था। आज जब हम देखते हैं कि पत्रकारिता का पूरी तरह व्यवसायीकरण हो गया है और मालिक केवल लाभ और राजनीतिक शक्ति अर्जित करने के लिए अखबार निकालते हैं, उस दौर में भी अनेक पत्रकार राष्ट्रीय और सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ काम कर रहे हैं। ''(शर्मा, 2011, पृष्ठ 45-46)।

नकारात्मक नहीं सकारात्मक

'पांचजन्य' के पूर्व संपादक श्री यादवराव देशमुख दीनदयालजी की पत्रकारीय प्रतिभा का इस प्रकार उल्लेख करते हैं, ''राष्ट्रधर्म में संपादक के रूप में उन्होंने कभी अपना नाम नहीं छपने दिया, पर 'राष्ट्रधर्म' का ऐसा कोई अंक नहीं है जिसमें उनके विचारोत्तेजक लेख के साथ ही उनकी पत्रकारिता की छाप न हो। वे उसी सामग्री का प्रकाशनार्थ चयन करते थे जो नकारात्मक न होकर सकारात्मक होती थी। जनहित विरोधी विचारों या आंदोलनों की आलोचना से उन्हें परहेज नहीं था, बशर्ते उनकी भाषा संतुलित हो और आलोचना स्वस्थ'' (शर्मा, 2011, पृष्ठ 55)। 'पॉलिटिकल डायरी' का उल्लेख करते हुए श्री यादवराव कहते हैं कि उस स्तंभ को पढ़कर यह बात उभरकर सामने आती है कि नेहरू युग की अनेक नीतियों की प्रखर आलोचना करते हुए भी उन्होंने कहीं असंयमित भाषा का प्रयोग नहीं किया। अपना 'पांचजन्य' का 1959 का एक अनुभव साझा करते हुए वे कहते हैं, ''संपादक के नाते 1959 में मैंने तिब्बत व चीन के संबंध में नेहरू सरकार की नीतियों से क्षुब्ध होकर पहले अंक में ही संपादकीय लिखा और उसका शीर्षक दिया 'गजस्तत्र न हन्यते'।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 31

उसे पढ़ने के बाद दीनदयालजी ने सहज भाव से कहा, 'भाई, तुम्हारा अग्रलेख बहुत अच्छा रहा, लेकिन उसका शीर्षक तुमने शायद बहुत सोचकर नहीं लिखा। पंडित नेहरू से हमारे वैचारिक मतभेद होना स्वाभाविक है, पर यह भी याद रखना चाहिए कि वे हमारे देश के प्रधानमंत्री हैं। उनकी आलोचना करते समय हल्के शब्दों का प्रयोग करना तो उचित नहीं होगा।' कितना सार्थक और स्पष्ट दिशा-निर्देश था उनका।''

तथ्यों के साथ छेड़छाड़ नहीं

पत्रकारिता में जो विकार आज हैं वे उस समय भी दिखायी देते हैं। ऐसा ही एक विकार है तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना। यादवरावजी ऐसी ही एक घटना का उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं, ''एक बार दीनदयाल जी द्वारा दिए गए एक वक्तव्य को एक प्रमुख अँग्रेजी दैनिक ने संदर्भ रहित प्रकाशित करते हुए उसका मखौल उड़ाने का प्रयास किया। उसके बाद जब संबंधित पत्रकार से दीनदयालजी की भेंट हुई तो उन्होंने अपने स्वभावानुसार आत्मीयतापूर्ण शब्दों में कहा, 'भाई, मैं यह तो नहीं मान सकता कि आपने उस वक्तव्य का संदर्भ काटकर समाचार भेजा होगा। पर अपने समाचार संपादक से इतना आग्रह जरूर करना चाहिए कि किसी समाचार को संदर्भ रहित रूप में तोड़-मरोड़ कर छापकर पाठकों को भ्रमित करना कहाँ तक ठीक है? बात को अपने पाठकों के सामने सही रूप में प्रकाशित करना और यदि उससे असहमति हो तो उसे भी अलग से स्पष्ट रूप में प्रकाशित करना पत्रकार का दायित्व है।' यह बात आज भी पत्रकारों को सीखने की जरूरत है।''

निष्ठा किसके प्रति?

पत्रकारिता में यह प्रश्न आज भी महत्त्वपूर्ण है कि पत्रकार और समाचार पत्र/टेलीविजन न्यूज चैनल/वेब पोर्टल की निष्ठा किसके प्रति होनी चाहिए-अपनी व्यक्तिगत विचारधारा के प्रति, अपने

पत्रकारों से बातचीत करते दीनदयाल जी

से संबंधित किसी दल के प्रति अथवा देश और जनता के व्यापक हितों के प्रति? यादवरावजी ऐसे ही एक प्रसंग का भी उल्लेख करते हैं। वे कहते हैं, ''बात संभवत: 1961 की है। उस समय चीनी आक्रमण के बादल देश पर मंडराने लगे थे। ऐसे समय अनेक राजनीतिक दलों एवं मजदूर संगठनों ने रेल कर्मचारियों की कतिपय माँगों के समर्थन में देशव्यापी रेल हड़ताल का आह्वान किया। सन् 1962 के चुनावों को निकट देखकर भारतीय जनसंघ ने भी उस हड़ताल का समर्थन किया। उसके प्रमुख नेताओं को स्वाभाविक अपेक्षा थी कि 'पांचजन्य' भी उस हड़ताल का समर्थन करेगा। पर मैंने अपने संपादकीय सहयोगियों से विचार-विमर्श कर हड़ताल को देशहित में विरोधी करार दिया। सत्तारूढ़ कांग्रेस के 'नवजीवन' दैनिक ने उसे जनसंघ पर प्रहार करने का अच्छा माध्यम बना लिया। इससे जनसंघ के साथियों का नाराज होना स्वाभाविक था। उन्होंने दीनदयालजी से शिकायत की कि क्या जनसंघ की नीतियों-कार्यक्रमों का 'पांचजन्य' में विरोध उचित है? सायंकाल अपने आवास पर मुझे बुलाया और जनसंघ के उन कार्यकर्ताओं को भी। उनकी नाराजगी का कारण बताया। फिर स्वयं ही प्रश्न किया, 'जो काम पार्टी के हित में हो, पर देश या समाज के लिए अहितकर या अनुचित न लगे, तो पाठकों का मार्गदर्शन करने वाले समाचार पत्र को क्या करना चाहिए?' प्रश्न में ही उत्तर भी निहित था। फिर बोले, 'भाई, पार्टी की अपनी कुछ विवशताएँ हड़ताल का समर्थन करने की हो सकती हैं। पर 'पांचजन्य' की तो ऐसी कोई विवशता नहीं होनी चाहिए। मुझे लगता है आप लोगों ने अपनी-अपनी जगह ठीक ही निर्णय लिया है।' बात यहीं पर साफ हो गयी। पार्टियाँ देश या समाज से बड़ी नहीं हो सकती। देशहित ही सर्वोपरि होना चाहिए। पत्रकार की निष्ठा भी देश के प्रति ही अपेक्षित है''(शर्मा, 2011, पृ. 57-58)।

भारतीयता का प्रश्न

मीडिया से जुड़ा एक और अहम प्रश्न है— भारतीयता के प्रश्न पर अँग्रेजी समाचार पत्रों द्वारा विरोधी रुख अपनाना, भाषाई पत्रों का रुख सकारात्मक रहता है। यही प्रश्न एक बार यादवराव देशमुख जी ने दीनदयालजी से किया था। उसका जवाब दीनदयालजी ने इस प्रकार दिया, ''अँग्रेजी के प्राय: सभी बड़े अखबार अँग्रेजों द्वारा चलाए गए थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद यद्यपि उनका स्वामित्व तो भारतीय हाथों में आ गया, पर उनमें कार्यरत संपादक एवं पत्रकार वर्ग तो उसी मानसिकता व भावभूमि से अभिभूत था। अँग्रेजों का समर्थन तो उन्होंने छोड़ दिया, पर अँग्रेजियत का नहीं। वे इस देश की संस्कृति, सभ्यता व परंपरा से वैचारिक रूप से कटे-कटे ही रहे। इसमें कुछ अपवाद जरूर थे। सर्वसाधारण अँग्रेजी समाचार पत्र का पत्रकार उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही हो पाता था। इसलिए उस पर 'अँग्रेजियत' सवार रहती थी। पर हिंदी या भाषायी पत्र-पत्रिकाओं का संपादक या पत्रकार वैचारिक दृष्टि से इस देश की भावभूमि से प्रेरित होता है। स्वतंत्रता संग्राम के समय हिंदी या

अँग्रेजी के प्राय: सभी बड़े अखबार अँग्रेजों द्वारा चलाए गए थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद यद्यपि उनका स्वामित्व तो भारतीय हाथों में आ गया, पर उनमें कार्यरत संपादक एवं पत्रकार वर्ग तो उसी मानसिकता व भावभूमि से अभिभूत था। अँग्रेजों का समर्थन तो उन्होंने छोड़ दिया, पर अँग्रेजियत का नहीं। वे इस देश की संस्कृति, सभ्यता व परंपरा से वैचारिक रूप से कटे-कटे ही रहे।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 33

भाषायी संपादकों एवं पत्रकारों की देशप्रेम व संस्कृति निष्ठा की परंपरा का भी बहुत बड़ा योगदान है। इस कारण एक ही पत्र समूह के हिंदी व अँग्रेजी के पत्रों के संपादक के चिंतन में स्पष्ट विरोधाभास रहता है। इसका एक और कारण है—अँग्रेजों के जाने के बाद भी स्वतंत्र भारत अपनी परंपरा के अनुरूप शिक्षण पद्धति का विकास नहीं कर सका। शरीर से हिंदुस्तानी और मन-मस्तिष्क पर अँग्रेजियत के संस्कार डालने वाली मैकाले-प्रणीत शिक्षा पद्धति ही छोटे मोटे परिवर्तनों के साथ आज भी चल रही है। उसमें से निकलने वाले पत्रकार उन संस्कारों से अलिप्त कैसे रह सकते हैं? जब तक इस शिक्षा पद्धति का भारतीयकरण नहीं होगा, तब तक अँग्रेजी समाचार पत्रों का भी भारतीयकरण नहीं हो सकेगा। इसमें भी कुछ अपवाद अवश्य रह सकते हैं और हैं भी''(शर्मा, 2011, पृष्ठ 58-59)।

अँग्रेजों के जाने के बाद भी स्वतंत्र भारत अपनी परंपरा के अनुरूप शिक्षण पद्धति का विकास नहीं कर सका। शरीर से हिंदुस्तानी और मन-मस्तिष्क पर अँग्रेजियत के संस्कार डालने वाली मैकाले-प्रणीत शिक्षा पद्धति ही छोटे मोटे परिवर्तनों के साथ आज भी चल रही है। उसमें से निकलने वाले पत्रकार उन संस्कारों से अलिप्त कैसे रह सकते हैं? जब तक इस शिक्षा पद्धति का भारतीयकरण नहीं होगा, तब तक अँग्रेजी समाचार पत्रों का भी भारतीयकरण नहीं हो सकेगा।

भारत का भारत से परिचय

वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंदकिशोर त्रिखा बताया करते थे कि दीनदयाल जी के लेखों में इस बात का आग्रह रहता था कि एक भी ऐसा शब्द प्रयुक्त न हो जाए, जो लोकहित के प्रतिकूल प्रभाव पैदा करता हो। अपने ही लेखों में नहीं, बल्कि जिस किसी ने भी इस प्रकार से लिखा हो, उन सबके लेखों में भी वे अगर ऐसे शब्द देखते थे तो उन्हें नि:संकोच टोक देते थे। यह जो वाणी का कठोर तप है, कोई तपस्वी ही उस पर चल सकता है। पत्रकार के रूप में दीनदयालजी ऐसे ही तपस्वी थे। किसी भी विषय पर लिखने से पहले उसके समस्त पहलुओं का गहरा अध्ययन और अन्वेषण करना उनके स्वभाव का अन्तर्निहित अंग था। इसलिए यथार्थ के पैमाने पर उनके विरोधी भी उन्हें चुनौती नहीं दे पाते थे। वे बड़े सटीक ढंग से और बड़े ही नपे-तुले शब्दों में अपनी बात कहते थे। उनके लेखन में बड़े-बड़े विवादों पर गंभीर चिंतन होता था। शब्द तो उनके सीधे-सादे होते, लेकिन अपने तर्कों से वे विपक्षियों को सहज निरुत्तर कर देते थे। अपने लेखन से उन्होंने भारत को भारत से परिचित कराया''(त्रिखा, 2015)।

स्वाध्याय का घटता चलन

'पीटीआई' की हिंदी सेवा 'भाषा' के पूर्व संपादक और वरिष्ठ स्तंभकार श्री वेदप्रताप वैदिक जिन्हें दीनदयालजी की पत्रकारिता को देखने व समझने का अवसर प्राप्त हुआ, कहते हैं, ''जो दोष आज हम पत्रकारिता में देखते हैं उनकी तरफ दीनदयालजी बराबर इशारा किया करते थे। उनके जमाने में जो पत्रकारिता थी, उससे जो विकट पत्रकारिता जब हम आज देखते हैं तो यह कठिन तथ्य मालूम पड़ता है कि पत्रकारिता आज वृत्ति बन गई है। लेकिन आजादी के बाद भी दीनदयालजी, जो पत्रकारों के पत्रकार और संपादकों के संपादक थे, उनकी पत्रकारिता में उन वृत्तियों का हमें कहीं पता नहीं चलता है, लक्षण नहीं मिलता है, जिनसे आज की पत्रकारिता ग्रस्त है। हमारे पास कलम की शक्ति है, वाणी का बल है, विचार का बल है तो राष्ट्र की

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 34

आज की पत्रकारिता और दीनदयालजी की पत्रकारिता में एक बड़ा बदलाव जो दिखायी पड़ता है वह यह है कि आज के पत्रकार स्वाध्याय नहीं करते। न उन्हें शब्दों की पहचान है और न ही विषयों की जानकारी उन्हें है। आज कोई गहरी बात लिख दे तो संपादन करते हुए कट जाती है। संपादन करने वाले को पता ही नहीं होता कि जो काटा गया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण था। यह एक बहुत बड़ी कमी आज की पत्रकारिता में है। बढ़िया संपादक वही हो सकता है जो रोज 10-12 घंटे स्वयं स्वाध्याय करे। तभी वह घंटा, आधा घंटा लिख पाएगा।

सेवा करें। यह संतोष और उस संतोष को प्राप्त करने वाले लोगों की पीठ पर कोई हाथ धरे, पीठ ठोके, थपथपाए वह काम दीनदयालजी बराबर करते रहे। इस मायने में दीनदयालजी पत्रकारों के पत्रकार थे और संपादकों के संपादक थे। उन्होंने यह बताया कि जो वर्तमान वृत्ती पत्रकारिता को चला रहे हैं वे भी आराध्य हैं, वे भी पूजनीय हैं, वे भी नमन योग्य हैं। इसलिए आज भी बड़ी शानदार परंपरा चल रही है। परंतु आज की पत्रकारिता और दीनदयालजी की पत्रकारिता में एक बड़ा बदलाव जो मुझे दिखायी पड़ता है वह यह है कि आज के पत्रकार स्वाध्याय नहीं करते। न उन्हें शब्दों की पहचान है और न ही विषयों की जानकारी उन्हें है। आज कोई गहरी बात लिख दे तो संपादन करते हुए कट जाती है। संपादन करने वाले को पता ही नहीं होता कि जो काटा गया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण था। यह एक बहुत बड़ी कमी आज की पत्रकारिता में है।

बढ़िया संपादक वही हो सकता है जो रोज 10-12 घंटे स्वयं स्वाध्याय करे। तभी वह घंटा, आधा घंटा लिख पाएगा। ...दीनदयालजी की पत्रकारिता साधारण पत्रकारिता के मुकाबले, साधारण पत्रकारों के मुकाबले अधिक गहन, अधिक श्रेयस्कर, अधिक दूरगामी, अधिक देर तक चलने वाली हैं जिनके पास मौलिक विचार होते हैं, भविष्य को देखने की दृष्टि होती है वे जीवित रहते हैं। यह दिल्ली शहर तो बड़े-बड़े बादशाहों की कब्रगाह है, बड़े-बड़े राजाओं का श्मशान है। उनको कौन याद करता है। आज दीनदयालजी को हम याद करते हैं, इसलिए कि उन्होंने नए विचार हमारे समक्ष रखे''(वैदिक, 2020)।

भारत की चिरंतन प्रतिष्ठा के लिए लेखन

उत्तर प्रदेश में दीनदयालजी के सान्निध्य में काम करने वाले एवं उत्तर प्रदेश विधान सभा के वर्तमान अध्यक्ष श्री हृदयनारायण दीक्षित दीनदयालजी की पत्रकारिता को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं, ''पंडितजी ने शब्द तपस्या के अनुष्ठान में बहुत कुछ लिखा है, जिनमें एकात्मक मानववाद, लोकमान्य तिलक की राजनीति, जनसंघ का सिद्धांत और नीति, जीवन का ध्येय, राष्ट्र जीवन की समस्याएँ, राष्ट्रीय आत्मानुभूति, हमारा कश्मीर, अखंड भारत, भारतीय राष्ट्रधारा का पुण्य प्रवाह, भारतीय संविधान पर दृष्टि, इनको भी आजादी चाहिए, अमरीकी अनाज-पी.एल.- 480, पॉलिटिकल डायरी, भारतीय अर्थनीति: विकास की एक दिशा, बेकारी समस्या और उसका हल, टैक्स या लूट, विश्वासघात, द टू प्लांस, डिवैल्यूएशन-ए ग्रेट फाल, आदि। उनके लगातार लिखते जाने का एक ही हेतु था-विश्व के मानचित्र पर भारत की विश्व-विजय और पुन:प्रतिष्ठा। पंडितजी ने भारतीय तत्त्वज्ञान को नए शब्द देने की कोशिश की। जब सारी दुनिया मनुष्य को ही पदार्थ सिद्ध करने में संलग्न थी, पंडितजी

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 35

मानव की महिमा और गरिमा की पुन:प्रतिष्ठा के लिए ही लिखते रहे। उनके रचना संसार की निष्पति है कि इस भारत ने मनुष्य को पदार्थ मात्र कभी नहीं माना। मनुष्य का जितना हिस्सा पदार्थ है, वह भी शुद्ध चैतन्य ही है। इसी सत्य की अनवरत शोध और आराधना में लगी चेतना का नाम भारत है। भारत देशवाचक ही नहीं, एक सनातन साधना की संज्ञा भी है। पंडितजी इसी भारतभूमि की चिरंतन प्रतिष्ठा की खातिर लिखते थे ''(शर्मा, 2011)।

'राष्ट्रधर्म' की चर्चा करते हुए श्री दीक्षित बताते हैं कि 1950 के दशक में एक-एक रुपया जोड़कर एक ट्रेडल प्रिंटिंग मशीन की व्यवस्था दीनदयालजी ने की। वे राष्ट्रधर्म प्रकाशन के प्रबंध संचालक थे, मगर प्रेस में झाड़ू लगाने के काम से लेकर मशीन की सफाई तक का कार्य करने में शर्म महसूस नहीं करते थे। राष्ट्रधर्म के तत्कालीन संपादक श्री वचनेश त्रिपाठी बताया करते थे कि एक बार शीत लहर के कारण रात्रि पाली में कम कंपोजिटर आए। दैनिक 'स्वदेश' भी पंडितजी के ही मार्गदर्शन में निकलता था। अखबार हर हालत में निकलना ही था। अखबार सही समय पर निकाला जा सके, इसके लिए पंडितजी ने स्वयं पूरी रात कंपोजिंग की। वे एक-एक अक्षर जोड़ते रहे। अक्षर जो कभी नष्ट नहीं होता, इसलिए उसे अक्षर कहते हैं। जब अक्षर ठीक से जोड़ा जाता है तब वह शब्द बनता है और शब्द वस्तुत: ब्रह्म ही होता है। भारतीय इतिहास का निष्काम कर्मयोगी रातभर अक्षर जोड़ता रहा। भारत की आज की पीढ़ी सौभाग्यशाली है कि उसे कर्म प्रेरणा देने की खातिर पंड़ित दीनदयाल उपाध्याय जैसे ऋषियों की कथनी और करनी का जीवंत रूप मौजूद है।

दीनदयाल जी ने भारतीय तत्त्वज्ञान को नए शब्द देने की कोशिश की। जब सारी दुनिया मनुष्य को ही पदार्थ सिद्ध करने में संलग्न थी, पंडितजी मानव की महिमा और गरिमा की पुनःप्रतिष्ठा के लिए ही लिखते रहे। उनके रचना संसार की निष्पति है कि इस भारत ने मनुष्य को पदार्थ मात्र कभी नहीं माना। मनुष्य का जितना हिस्सा पदार्थ है, वह भी शुद्ध चैतन्य ही है। इसी सत्य की अनवरत शोध और आराधना में लगी चेतना का नाम भारत है।

भाषा का प्रश्न

भाषा और पत्रकारिता का गहरा संबंध है। भाषा और संस्कार का भी गहरा संबंध है। दीनदयालजी इसे लेकर भी सतत् जागरूक रहते थे। चूंकि अँग्रेजी हमारे भाव को प्रकट नहीं कर सकती, इसलिए वे भारतीय भाषाओं के प्रयोग के ही आग्रही थी। हालाँकि अँग्रेजी से उनका विरोध नहीं था, परंतु वे अँग्रेजी को दूसरे स्थान पर रखते थे। हम सभी जानते हैं कि पंड़ित नेहरू अँग्रेजी प्रेमी थे और वे भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान देने से हिचकिचाते थे, परंतु दीनदयालजी की दृष्टि में स्वभाषा स्वातंत्र्य का प्राणतत्त्व थी। जिन भाषाओं के आधार पर अपना पूरा समाज सहस्त्रों वर्ष सांस्कृतिक जीवन का अनुभव करता रहा, उन भाषाओं के प्रति देश के प्रधानमंत्री इतनी उपेक्षा बरतें, यह बात उनके लिए बहुत पीड़ादायक थी। दीनदयालजी ने लिखा, ''पंडित नेहरूजी को संस्कृत नहीं चाहिए, इस कारण हमने संस्कृत का त्याग किया तो अन्यान्य देशी भाषाओं की विविध विषयों की पारिभाषिक शब्दावली क्या रहेगी ? अँग्रेजी भाषा ही रखनी है या सामान्य नागरिक के लिए देशी भाषाओं में नए शब्दों का निर्माण करना है ? जो अँग्रेजी शब्द सदियों से देशी भाषाओं में सहजता से प्रचार में हैं, उन्हें सीमापार करने का किसी

हमारे दीनदयालजी की एक विशेषता थी कि तात्कालिक विषय को भी एक स्थायी सैद्धांतिक अधिष्ठान देकर वे लिखा करते थे। केवल तात्कालिक बात कहकर उसे छोड़ देना उनका स्वभाव नहीं था। कई वर्षों तक निकट सहकारी के नाते मैं उन्हें जानता रहा हूँ। मुझे पता है कि वे मूलगामी विचारों के अभ्यासक थे। तात्कालिक विषयों पर बोलते या लिखते समय भी, उसके पीछे कोई-न-कोई चिरंतन सिद्धांत है, इसका विचार करके उसके अधिष्ठान पर ही वे शब्द प्रयोग किया करते। ...उनके लेखों को हम सहृदयता से देखेंगे, तो दिखायी देगा कि टीका-टिप्पणी करते समय भी उनके समूचे हृदय में किसी दल और किसी व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार के अनादर की, दूरता की भावना नहीं थी। जो कुछ लिखा वह आत्मीयता से लिखा।

– श्रीगुरुजी

का आग्रह नहीं है, फिर भी यह भूलना नहीं चाहिए कि विधिशास्त्र, विज्ञानशास्त्र जैसे विषयों में नए-नए शब्द निर्मित करने होंगे''(शर्मा, 2011, पृष्ठ 93)।

कालजयी साहित्य का सृजन

'पॉलिटिकल डायरी' के तहत लिखे हुए उनके लेख मई 1968 में उनकी हत्या के बाद पुस्तकाकार में प्रकाशित हुए और उस पुस्तक की प्रस्तावना काँग्रेस के तत्कालीन वरिष्ठ नेता तथा काशी विद्यापीठ के तत्कालीन कुलपति डॉ. संपूर्णानंद ने लिखी। उस प्रस्तावना में वे लिखते हैं—

''पुस्तक में कुछ लेख ऐसे हैं जो तात्कालिक संदर्भों के हैं, कुछ लेखे ऐसे हैं जो कुछ दूर तक जाने वाले हैं और कुछ लेख ऐसे हैं जो कालजयी हैं''(शर्मा, 2011, पृष्ठ 34)।

मुंबई में 17 मई, 1968 को उस पुस्तक का विमोचन करते हुए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक श्रीगुरुजी ने कहा—

''पुस्तक में अनेक विषय तो तात्कालिक ही हैं, परंतु हमारे दीनदयालजी की एक विशेषता थी कि तात्कालिक विषय को भी एक स्थायी सैद्धांतिक अधिष्ठान देकर वे लिखा करते थे। केवल तात्कालिक बात कहकर उसे छोड़ देना उनका स्वभाव नहीं था। कई वर्षों तक निकट सहकारी के नाते मैं उन्हें जानता रहा हूँ। मुझे पता है कि वे मूलगामी विचारों के अभ्यासक थे। तात्कालिक विषयों पर बोलते या लिखते समय भी, उसके पीछे कोई-न-कोई चिरंतन सिद्धांत है, इसका विचार करके उसके अधिष्ठान पर ही वे शब्द प्रयोग किया करते। ...उनके लेखों को हम सहृदयता से देखेंगे, तो दिखायी देगा कि टीका-टिप्पणी करते समय भी उनके समूचे हृदय में किसी दल और किसी व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार के अनादर की, दूरता की भावना नहीं थी। जो कुछ लिखा वह आत्मीयता से लिखा'' (शर्मा, 2011, पृष्ठ 18)।

निष्कर्ष

दीनदयालजी की पत्रकारिता का विश्लेषण करते हुए वरिष्ठ लेखक डॉ. महेश चंद्र शर्मा लिखते हैं, ''उनके संपादकीयों, आलेखों एवं स्तंभ लेखों में उनकी चिंतन शैली, विद्वता एवं अध्ययन क्षमता तो परिलक्षित हैं ही, पत्रकारीय दायित्व-बोध एवं शालीनता भी उनकी रेखांकनीय विशेषता हैं। सामाजिक सरोकारों से पथभ्रष्ट पत्रकारिता बहुत खतरनाक हो सकती है। आज प्रोफेशनलिज्म के नाम पर कुछ पत्रकारों द्वारा पत्रकारिता के साथ जो व्यवहार हो रहा है, वह चिंता उत्पन्न करने वाला है। ऐसे समय में दीनदयाल जी द्वारा पत्रकारिता के संदर्भ में किया

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 37

गया मार्गदर्शन एक समुचित पाथेय है। क्या हम इस पाथेय को ग्रहण कर सकेंगे ? यही हमारे सामने आज का यक्ष प्रश्न है''(शर्मा, 2011)।

सामाजिक सरोकारों से कटकर पत्रकारिता कितनी नुकसानदेह हो सकती है यह आज की पत्रकारिता को देखकर समझ में आता है। मीडिया का एक वर्ग आज अपने लाभ के लिए देशविरोधी शक्तियों से भी समझौता करने में भी संकोच नहीं करता। राजनीतिक दलों तथा कुछ छुपी हुई वैश्विक ताकतों को लाभ पहुँचाने के लिए झूठी खबरें छापने का चलन आजकल जोरों पर है। चुनाव के दौरान छपने वाली 'पेड न्यूज' का मुद्दा करीब दो दशक से चर्चा में है। समाचार पत्र के प्रथम पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक और न्यूज चैनल की पहली खबर से लेकर अंतिम खबर तक नकारात्मकता ही छायी रहती है। वर्तमान समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और न्यूज चैनलों एवं वेब पोर्टलों को देखकर लगता है कि आज देश में सिर्फ नकारात्मक घटनाएँ ही घट रही हैं और समाज में कुछ भी सकारात्मक और रचनात्मक नहीं हो रहा है। समाज की उजली तस्वीर मीडिया से गायब है। ऐसे समय में दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता और उनके द्वारा रचित साहित्य हमें नई दिशा प्रदान करता है। दीनदयालजी ने सार्वजनिक जीवन के प्रति सचेत, सुरुचिपूर्ण एवं संस्कारक्षम पत्रकारिता को अपने संबद्ध कार्यकर्ताओं व समाचार पत्रों के माध्यम से विकसित करने का प्रयत्न किया।

लेखक भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं।

संदर्भ

त्रिखा, नंदकिशोर. (2015). वरिष्ठ पत्रकार, 28 दिसम्बर, 2015 को नई दिल्ली स्थित उनके आवास पर साक्षात्कार।

दीनदयाल उपाध्याय चित्रावली. (2017). पं. दीनदयाल उपाध्याय चित्रावली. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 21।

पी.टी.आई. (2017). Amitshah lists expressions used by Congress leaders against PM Narendra Modi. Retrieved at 7.37 pm on April 2, 2020 fromhttps://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/amit-shah-lists-expressions-used-by-congress-leader-against-pm-narendra-modi/articleshow/61967115.cms?from=mdr.

मिश्र, अच्युतानंद. (2020). नई दिल्ली में दिनाँक 10 मार्च, 2020 को दूरभाष पर साक्षात्कार।

वैदिक, वेदप्रताप. (2020). वरिष्ठ पत्रकार, 10 मार्च, 2020 को दूरभाष पर साक्षात्कार।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 18।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र. (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 34।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 44-45।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 45-46।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 48।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 55।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली: दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी, पृष्ठ 93।

शर्मा, डॉ. महेश. चंद्र (2018). पं. दीनदयाल उपाध्याय: कर्तृत्व एवं विचार. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 38

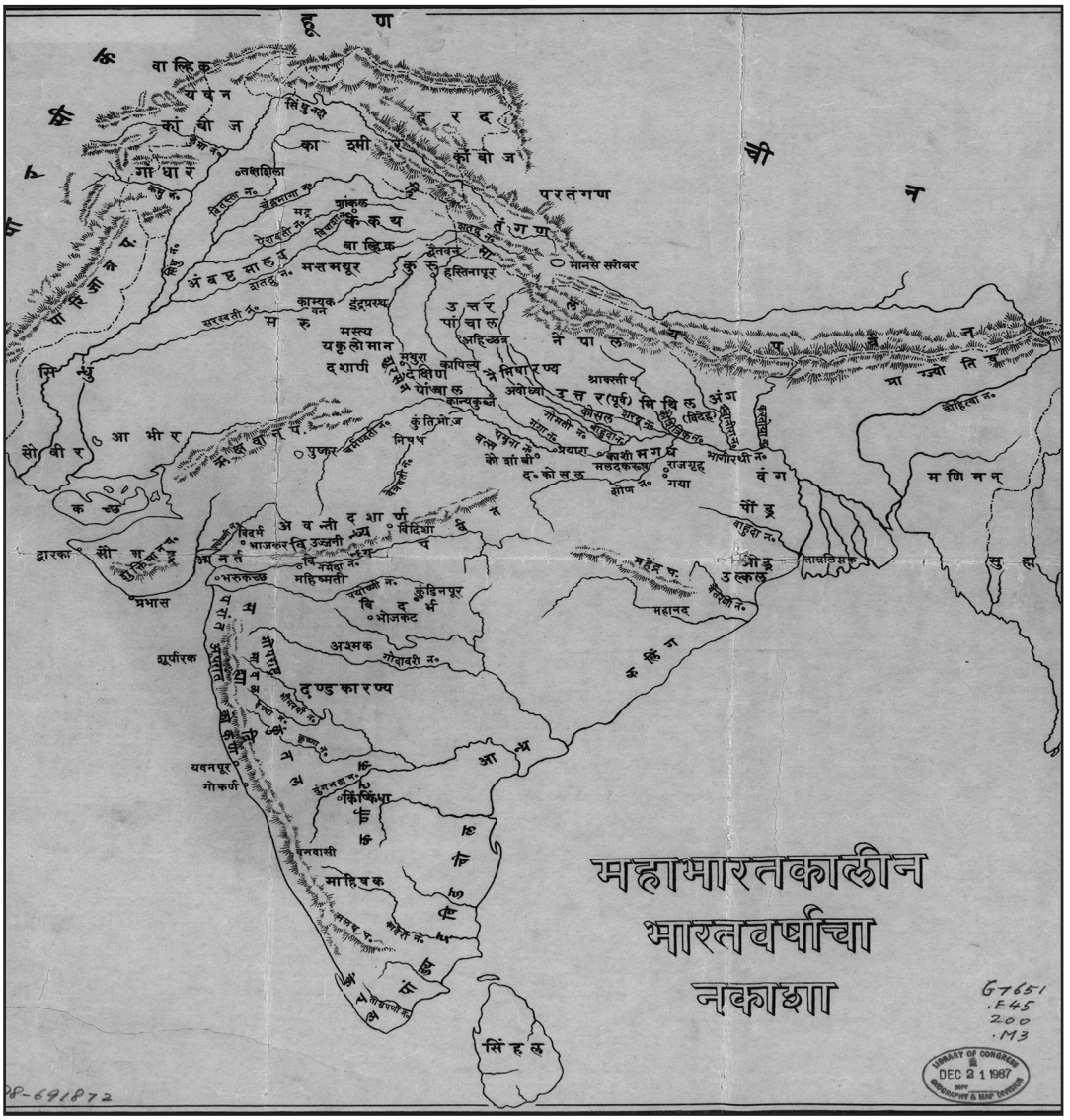

भारतीय विचार सरणि में राजनीति राष्ट्रनीति का एक अंग रही है। जब राजनीति राष्ट्रनीति से अलग होने की कोशिश करती है तो जनमन में पीड़ा होती है। भारतीय विचार पद्धति, खंड-खंड में नहीं विचार करती। हमारी दृष्टि एकात्म रही है। हमारे यहाँ, राष्ट्र के परम वैभव की प्राप्ति हेतु, राष्ट्रनीति का मूलतत्त्व राष्ट्र चिंतन, नैतिक सत्ता व 'वसुधैव कुटुंबकम्' की अवधारणा है। सारी दुनिया हमारा परिवार है और राष्ट्रहित हमारा परमहित है, जब यह सोच राजनीतिक दलों में बढ़ेगी, तभी राष्ट्र परम वैभव प्राप्त कर सकेगा।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 39

ओम प्रकाश मिश्र

भारतीय राजनीति पर राष्ट्रनीति के यक्ष-प्रश्न

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय राजनीति पर समय-समय पर अनेक बार कई सार्थक प्रश्न उठाये गए हैं, जिनकी न्यायपालिका, मीडिया, बौद्धिक वर्ग आदि ने कई बार आलोचना/समालोचना की है। कानूनों का भी परीक्षण हुआ परंतु भारतीय राजनीति पर, भारत राष्ट्र की राष्ट्रनीति की दृष्टि से, परीक्षण व समीक्षा तुलनात्मक रूप से कम हुई है।

राष्ट्र की संकल्पना, देश/राज्य की संकल्पना से बहुत प्राचीन है। राष्ट्र व देश एक संकल्पना नहीं हैं। देश बनने के लिए भूमि का टुकड़ा तथा जनसंख्या आवश्यक है, किंतु राष्ट्र बनने के लिए तीन घटक आवश्यक हैं—

- पहला जिस देश में लोग रहते हैं, उस भूमि के बारे में 'मातृ' भाव का होना।
- दूसरा उसकी समान संस्कृति या मूल्य अवधारणा।
- तथा तीसरा अपने पुरखों व अपने इतिहास के विषय में प्रबल भावना।

देश दिखाई पड़ता है, राष्ट्र अदृश्यमान है। जैसे शरीर दिखाई पड़ता है और आत्मा अदृश्य है। जो अस्मिता व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण होती है, वैसे ही राष्ट्र की अस्मिता भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। राष्ट्रीय अस्मिता के कमजोर होने पर राष्ट्र कमजोर हो जाता है।

राष्ट्र की अस्मिता ही राष्ट्र का

प्राणतत्त्व है। राष्ट्र की भूमि के खंड का संबंध, जन का संबंध माता व पुत्र का होता है। हमारी राष्ट्रीयता का आधार 'भारत माता' है।

राष्ट्र व राज्य एक नहीं होते। राष्ट्र भू-सांस्कृतिक श्रद्धा से निर्मित होता है। राज्य किसी भू-भाग पर सत्ता या शासन की व्यवस्था होती है।

भारत एक सांस्कृतिक अवधारणा

भारत एक भौगोलिक शब्द नहीं है, वरन् एक सांस्कृतिक शब्द है, यह एक संस्कृति का, समृद्ध परंपरा का नाम है। राष्ट्र विचार टुकड़ों-टुकड़ों में नहीं होता है। राजनीति अलग होती है, तथा राष्ट्रनीति के मुख्य तत्त्व अलग होते हैं। राष्ट्रनीति को लोकनीति के रूप में समझा जा सकता है, जिसे स्मृतिकार बृहस्पति ने कहा कि राज्य वृत्त एक अलग विषय है और लोकवृत्त अलग। राष्ट्रनीति का लक्ष्य राष्ट्र निर्माण होता है, सत्ता प्राप्ति मात्र नहीं। राष्ट्र-निर्माण का परम लक्ष्य राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना है। सारी दुनिया का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि राष्ट्र का निर्माण कभी भी शासन/सत्ता के द्वारा हुआ हो, ऐसा नहीं है। जब जन सामान्य जाग्रत होकर, संगठित रूप से चरित्र निर्माण के द्वारा राष्ट्र निर्माण का सर्वांगीण प्रयास करेगा तभी जनकल्याण, राष्ट्र निर्माण व परम वैभव का लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। महान चिंतक/मनीषी दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के अनुसार —''...जिसके कारण भारतीय जीवन मूल्य टूट रहे हैं, राष्ट्रीय जाग्रति समाप्त होती जा रही है। मैं कॉलेज में था तो हमें एक कविता पढ़ाई जाती थी, जिसमें कहा गया था कि—'' अर्थातुराणां न पिता न बंधु: (जो केवल अर्थ प्राप्त के लिए आतुर, वह नहीं देखता कि बाप कौन है और भाई कौन है) और ''कामातुरांणां न भयं न लज्जा'' (कामातुर को भय और लज्जा नहीं होती) आज के संदर्भ में यह कहना पड़ता है कि — ''सत्ता तुराणां न दल: न राष्ट्र:'' अर्थात् सत्तातुर लोगों के लिए न दल है न राष्ट्र''(दत्तोपंत ठेंगडी: जीवन दर्शन, खंड 3, पृष्ठ 91, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली-55)।

राष्ट्रनीति का लक्ष्य राष्ट्र निर्माण होता है, सत्ता प्राप्ति मात्र नहीं। राष्ट्र-निर्माण का परम लक्ष्य राष्ट्र को परम वैभव तक ले जाना है। सारी दुनिया का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि राष्ट्र का निर्माण कभी भी शासन/सत्ता के द्वारा हुआ हो, ऐसा नहीं है। जब जन सामान्य जाग्रत होकर, संगठित रूप से चरित्र निर्माण के द्वारा राष्ट्र निर्माण का सर्वांगीण प्रयास करेगा तभी जनकल्याण, राष्ट्र निर्माण व परम वैभव का लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

ठेंगड़ी जी का यह उद्‌बोधन 1984 का है यानी आज से लगभग 36 वर्ष पहले का। उसके पश्चात् तो परिवारवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद या भाषायी राजनीति, माफिया-नेता गठजोड़, नौकरशाही की रीढ़ विहीनता, समाज में धनाढ्यों की इज्जत (धन चाहे जैसे आया हो), अर्थनीति में राष्ट्रनीति की निरंतर उपेक्षा, मीडिया के इको सिस्टम से राजनीति का प्रभावित होना, चुनावों में बेतहाशा खर्च, काला धन, भ्रष्टाचार, आदि-आदि तत्त्वों ने स्थिति को और भी जटिल बना दिया है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व राजनीति में कूदने का अर्थ त्याग, परम वैभव की प्राप्ति हेतु स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सेदारी होती थी। उस समय राजनीति में लोग, समाज व राष्ट्र को कुछ अर्पण करने जाते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कुछ वर्षों तक उसकी छाया/प्रतिच्छाया दिखी। परंतु पिछले खासकर चार दशकों से जो राजनीति में आए, उनमें अधिकांशत:

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 41

कुछ पाने की लालसा से ही राजनीति में आए। समाज व राष्ट्र को कुछ देने का कही कोई मंतव्य, अधिकतर लोगों में नहीं दिखता है।

परिवारवाद

भारत राष्ट्र में परिवार व्यवस्था अर्थात् कुटुंब संकल्पना के कारण समाज का ताना-बाना खड़ा है, परंतु परिवारवाद का रोग, जिस तरह भारतीय राजनीति में घुन की तरह लग गया है, उससे राजनीति का लक्ष्य, जनकल्याण नहीं वरन् सत्ता व अकूत धन संपदा की प्राप्ति हो गया है।

हमारी संस्कृति में सनातन चिंतनधारा को कठोपनिषद् में नचिकेता-यम संवाद से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है -

''न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि
त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव।।''

(कठोपनिषद्: 1.27)

अर्थात् धन से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता, आग में घी डालने से जैसे आग जोरों से भड़कती है, उसी प्रकार धन और भोगों की प्राप्ति से भोग कामना का और भी विस्तार होता है, वहाँ तृप्ति कैसी? वहाँ तो दिन रात अपूर्णता अभाव में ही जलना पड़ता है। ऐसे दु:ख में धन और भोगों की माँग कोई भी बुद्धिमान पुरुष नहीं कर सकता। भारत राष्ट्र में ''तेन त्यक्तेन भुंजीथा:'' और ''सर्वे भवंतु सुखिन:'' की वैचारिक भूमि रही है, किंतु स्वतंत्र भारत में आज की राजनीति में, परिवार व भाई/भतीजों के अलावा बहुतेरे नेताओं को कुछ दिखता ही नहीं। कहाँ तो मदनमोहन मालवीय, वीर सावरकर,लाला लाजपतराय, महात्मा गांधी, डॉ. भीम राव अंबेडकर, के.एम. मुंशी, वासुदेव शरण अग्रवाल जैसे विद्वानों, समाज सेवियों व विचारकों की सरणि रही, सुभाष चंद्र बोस ने आइसीएस की नौकरी को लात मार दी थी, अब वैसे नेता कहाँ हैं?

दीनदयाल उपाध्याय व दत्तोपंत ठेंगड़ी सरीखे समाज सेवियों का निस्पृह, निष्कलंक जीवन आज की युवा पीढ़ी के लिए आदर्श होना चाहिए, किंतु परिवारवादी राजनेताओं का एकसूत्री कार्यक्रम सत्ता की प्राप्ति रह गया है, फिर सत्ता के सहारे भ्रष्टाचार का लाइसेंस पा जाते हैं।

भारत राष्ट्र में परिवार व्यवस्था अर्थात् कुटुंब संकल्पना के कारण समाज का ताना-बाना खड़ा है, परंतु परिवारवाद का रोग, जिस तरह भारतीय राजनीति में घुन की तरह लग गया है, उससे राजनीति का लक्ष्य, जनकल्याण नहीं वरन् सत्ता व अकूत धन संपदा की प्राप्ति हो गया है और फिर वे सत्ता के सहारे भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाते हैं।

क्षेत्रवाद

दूसरी बड़ी समस्या आज की राजनीति में बढ़ता क्षेत्रवाद है। क्षेत्रवाद की भावना को हवा देने से क्षेत्रीय दलों का उभार हुआ। अनेकों बार कई क्षेत्रीय दल, अपने संकुचित राजनीतिक हितों के कारण, राष्ट्र की एकता पर कुठाराघात करते हैं। भाषा के आधार पर आंदोलन (कई बार हिंसक प्रदर्शन आदि) भी कराने का इतिहास हमारे सामने हैं।

बाहुबलियों व माफिया का प्रभाव

राजनीति में बाहुबलियों व माफिया का प्रवेश और धीरे-धीरे बढ़ना एक खतरनाक संदेश है। कुछ राज्यों विशेषत: उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में शुरूआती

राजनीतिक खिलाड़ी के रूप में बाहुबलियों-माफिया का प्रवेश, सहायक के रूप में ही था। बूथ मैनेजमेंट, दूसरे विपक्षी प्रत्याशी को डराने/धमकाने का कार्य माफिया से लिया जाता था। धीरे-धीरे बाहुबलियों-माफिया के लोगों को लगा कि जब वह ही महत्त्वपूर्ण हैं तो क्यों न प्रत्यक्षत: चुनाव लड़ें। आरंभ में कई माफिया स्वतंत्र उम्मीदवार या छोटे दलों द्वारा बनाये गए उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़े। बाद में क्षेत्रीय दलों ने उन्हें उम्मीदवार बनाना शुरू किया। फिर क्या था, बाहुबल के आधार पर डरा/धमकाकर तथा जाति/धर्म का सहारा लेकर चुनाव लड़ने और जीतने भी लगे। लगभग सभी क्षेत्रीय दलों में माफिया का महत्त्व बढ़ा।

राजनीति में बाहुबलियों व माफिया का प्रवेश और धीरे-धीरे बढ़ना एक खतरनाक संदेश है। कुछ राज्यों विशेषतः उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में शुरूआती राजनीतिक खिलाड़ी के रूप में बाहुबलियों-माफिया का प्रवेश, सहायक के रूप में ही था। बूथ मैनेजमेंट, दूसरे विपक्षी प्रत्याशी को डराने/धमकाने का कार्य माफिया से लिया जाता था। धीरे-धीरे बाहुबलियों-माफिया के लोगों को लगा कि जब वह ही महत्त्वपूर्ण हैं तो क्यों न प्रत्यक्षतः चुनाव लड़ें।

धनबल का प्रभाव

बाहुबल के अतिरिक्त धनबल का महत्त्व भी धीरे-धीरे राजनीति में बढ़ता गया। अनुमानत: वर्ष 1980 के बाद से यह बहुत तेजी से बढ़ा है। पहले जहाँ हजारों रुपए खर्च कर विधानसभा चुनाव 1980 के आसपास तक लड़े जाते थे, धीरे-धीरे यह राशि लाखों रुपए में पहुँच गई और फिर विधानसभा/लोकसभा के चुनावों में करोड़ों रुपए खर्च होने लगे (कुछ खुलकर, ज्यादातर छिपाकर)। मेरे स्वर्गीय पिता श्री शीतला प्रसाद मिश्र 1952 के विधानसभा चुनाव में इलाहाबाद की झूँसी सीट से काँग्रेस प्रत्याशी श्री शिवनाथ काटजू (जो बाद में उच्च न्यायालय इलाहाबाद के जज भी हुए) के चुनाव एजेंट थे। पिता जी बताते थे कि काटजू साहब के चुनाव का पूरा खर्च कुछ सौ रुपया ही था। साइकिलों पर चुनाव प्रचार होता था। अब तो गाड़ियों की कतारें हर बड़े प्रत्याशी की दिखायी पड़ती हैं (हाँ कुछ एक अपवाद प्रसन्नता देते हैं जैसे भारत सरकार में केंद्रीय राज्य मंत्री श्री प्रताप सारंगी, जो उड़ीसा की बालासोर सीट से लोकसभा के लिए चुने गए हैं, उनके विषय में बताया जाता है कि वे साइकिल पर अपना चुनाव प्रचार प्रसार किए थे)।

प्रबुद्ध वर्ग का घटता प्रभाव

क्षेत्रवाद, परिवारवाद, जातिवाद, बाहुबल-माफिया व धनबल के अतिरिक्त, एक प्रमुख तत्त्व बुद्धिजीवियों का राजनीति से हाशिए पर जाना रहा है। पहले राजनीति में जो भी लोग आते थे, बौद्धिक वर्ग से आते थे। बाल गंगाधर तिलक, डॉ. भीमराव अंबेडकर, महात्मा गांधी, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सरदार पटेल, जवाहर लाल नेहरू, वीर सावरकर, दीनदयाल उपाध्याय, डॉ. राममनोहर लोहिया, अटल बिहारी वाजपेयी आदि नेता अच्छे लेखक भी थे, परंतु अब राजनीति में प्रबुद्ध लोगों का अभाव दिखायी देने लगा है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव संसद और विधानसभाओं में होने वाली चर्चा में स्पष्ट दिखाई देता है।

राजनीतिक सत्ता आती है और जाती है, महत्त्व तपश्चर्या, राष्ट्रचिंतन, नैतिक नेतृत्त्व का है। दुर्भाग्य है कि पिछले लगभग तीन दशकों में एक प्रवृत्ति राजनीतिक क्षेत्र में बढ़ रही है कि बौद्धिक वर्ग को

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 43

महत्त्व कम मिलना शुरू हुआ है। हाथी बहुत बड़ा शक्तिशाली होता है परंतु बहुत छोटा सा अंकुश उस पर नियंत्रण करता है। राजसत्ता में बड़ी शक्ति होती है, किंतु चंद्रगुप्त मौर्य को आचार्य चाणक्य की आवश्यकता थी। हमारे यहाँ राजा को कभी भी सर्वोच्च सत्ता या शक्तिमान नहीं माना गया। कानून बनाने का अधिकार, राजा को या शासन को नहीं था, हमारे यहाँ राजा को संविधान का पालक ही माना गया। हमारे यहाँ स्मृतियाँ, लगोटी वालों ने बनायी।

हमारे यहाँ गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा थी, जो राष्ट्र को समर्पित शक्ति तैयार करती थी। मुनि वसिष्ठ महल में नहीं रहते थे। चाणक्य तो अपनी कुटिया में ही रहे, जबकि उन्होंने ही चंद्रगुप्त मौर्य को सम्राट बनाया था।

राजनीति में संवाद व संप्रेषण का स्तर दिनों-दिन गिरता जा रहा है। अपनी बात को रखने के लिए कितनी स्तरहीन भाषा का प्रयोग किया जाने लगा है यह देखकर चिंता होती है। राजनीतिक विरोध उचित है किंतु भाषा की मार्यादा भी अत्यंत आवश्यक है। पहले लोग समस्या पर विचार विमर्श के लिए पत्र व्यवहार करते थे। अब 'तत्काल सेवा' की भाँति ट्विटर जैसे साधनों का उपयोग, बिना विषय वस्तु को समझे ही, करने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

राष्ट्र की सुरक्षा के संबंध में सभी राजनीतिक दलों को राष्ट्रहित की दृष्टि से राष्ट्र का चिंतन करना चाहिए। इधर ऐसा देखा गया कि क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थ साधना के लिए राष्ट्रहित का विचार कई राजनीतिक दल नहीं करते।

राजनीति में संवाद व संप्रेषण का स्तर दिनों-दिन गिरता जा रहा है। अपनी बात को रखने के लिए कितनी स्तरहीन भाषा का प्रयोग किया जाने लगा है यह देखकर चिंता होती है। राजनीतिक विरोध उचित है किंतु भाषा की मार्यादा भी अत्यंत आवश्यक है। पहले लोग समस्या पर विचार विमर्श के लिए पत्र व्यवहार करते थे। अब 'तत्काल सेवा' की भाँति ट्विटर जैसे साधनों का उपयोग, बिना विषय वस्तु को समझे ही, करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। समाज के सभी अंगों की भाषा आदि बदली है, परंतु अभिव्यक्ति का तरीका राजनीति में, सबसे ज्यादा खराब हुआ है।

राजनीति राष्ट्रनीति का एक अंग

भारतीय विचार सरणि में राजनीति राष्ट्रनीति का एक अंग रही है। जब राजनीति राष्ट्रनीति से अलग होने की कोशिश करती है तो जनमन में पीड़ा होती है। भारतीय विचार पद्धति, खंड-खंड में नहीं विचार करती। हमारी दृष्टि एकात्म रही है।

हमारे यहाँ, राष्ट्र के परम वैभव की प्राप्ति हेतु, राष्ट्रनीति का मूलतत्त्व राष्ट्र चिंतन, नैतिक सत्ता व ''वसुधैव कुटुंबकम्'' की अवधारणा है। सारी दुनिया हमारा परिवार है और राष्ट्रहित हमारा परमहित है, जब यह सोच राजनीतिक दलों में बढ़ेगी, तभी राष्ट्र परम वैभव प्राप्त कर सकेगा।

लेखक इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज के अर्थशास्त्र विभाग के पूर्व प्रवक्ता हैं।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 44

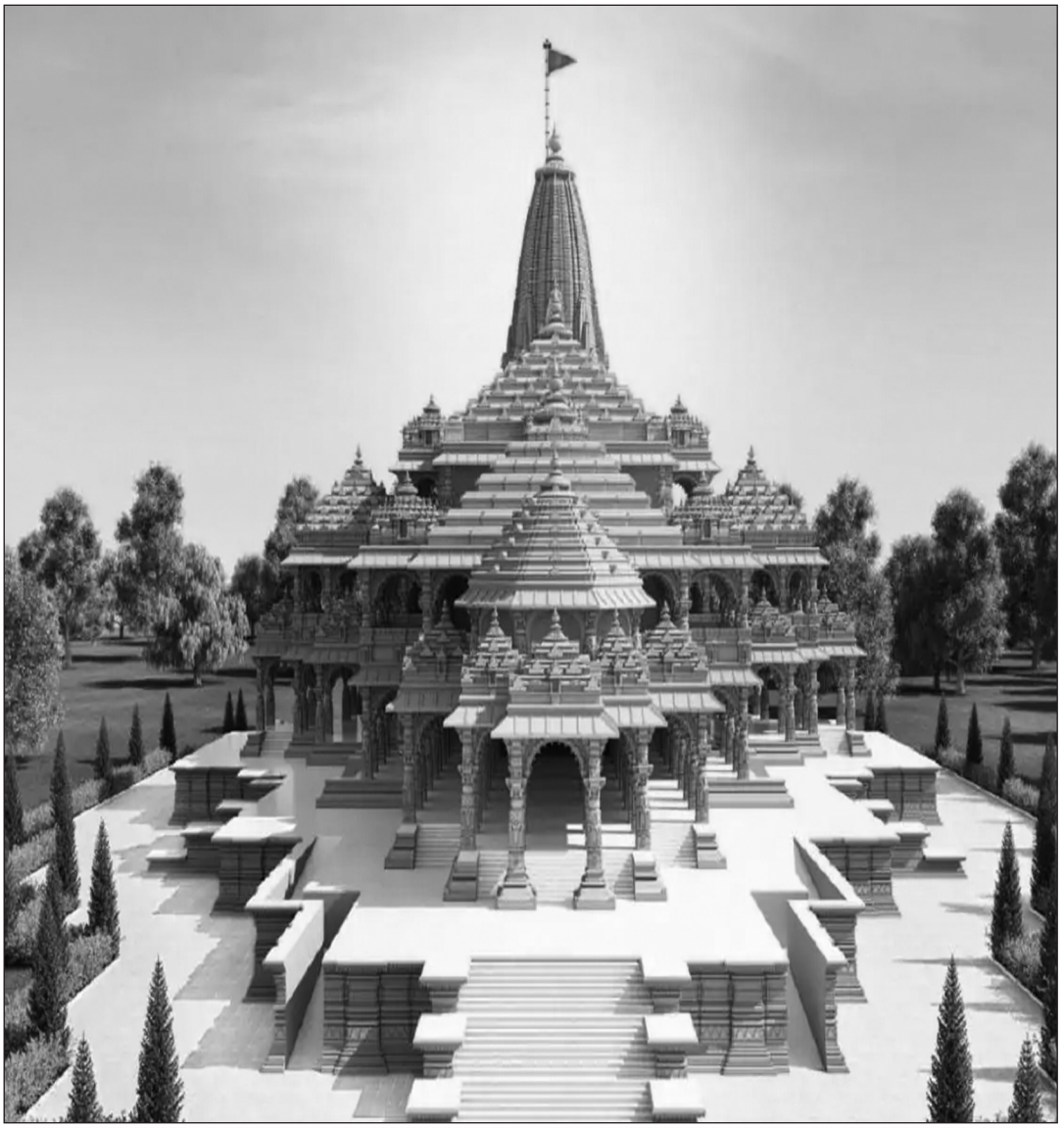

श्रीराम मंदिर निर्माण का शुभारंभ होते ही वामपंथी खेमा रुदनगान करने लगा कि धर्मनिरपेक्षता मर गई, जबकि वास्तविकता यह है कि भारत राज्य तो संविधान में दिए हुए धर्म-निरपेक्षता के प्रावधानों पर वचनबद्ध भी है और कटिबद्ध भी। उन पर श्री राम मंदिर निर्माण से किसी प्रकार की भी आँच नहीं आती है। हमारी धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय एकीकरण का एक साकार विचार है जिसमें राष्ट्रीय जीवन को पल्लवित करने की क्षमता है। मंदिर बनें, मसजिद बनें, चर्च बनें या गुरुद्वारे बनें इनके निर्माण से भारतीय संविधान का यह दृढ़ आधार हिल नहीं सकता क्योंकि संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार अपरिवर्तनीय हैं।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 45

डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा

सेक्यूलरिज्म (धर्मनिरपेक्षता) बनाम श्रीराम मंदिर पुनरुत्थान

पाँच अगस्त, 2020 का दिन भारतीय इतिहास में गौरव का दिन है। उस दिन हमने अपनी बाबरी-युगीन लाचारी को शौर्य में बदल दिया और दासता के उस कलंक को धो दिया, जिसको मिटाने के लिए महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवा जी, वीर छत्रसाल तथा दशमेश गुरु गोविंद सिंह जी संघर्ष रत रहे; परंतु जैसे ही श्री राम मंदिर निर्माण का शुभारंभ व भूमि पूजन हुआ, वैसे ही छद्म सेक्यूलरवादी वामपंथी रुदनगान करने लगे कि धर्मनिरपेक्षता मर गयी। इसलिए यह आवश्यक है कि धर्म निरपेक्षता की परिभाषा, उसकी व्याख्या तथा उसके संवैधानिक प्रावधानों को ठीक प्रकार से समझने का प्रयास करें। (इस लेख में रिलीजन या मजहब के लिए धर्म शब्द का प्रयोग इसलिए किया है कि आम जनता के मन-मस्तिष्क में यही शब्द रूढ़ हो गया है, यद्यपि संस्कृत में धर्म का अर्थ बहुत व्यापक है- इसलिए 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द का प्रयोग इसी प्रचलित अर्थ में किया गया है।)

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में यह निश्चय किया गया है कि भारतीय संघ एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होगा। यह शब्द (सेक्लयूलरिज्म) संविधान में आदि से अंत तक कहीं नहीं मिलता। संविधान की धारा 25-28 में धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी उपलब्ध मौलिक अधिकार धर्मनिरपेक्ष राज्य की आधारशिला हैं। संविधान में धर्म निरपेक्ष राज्य की अवधारणा यह है कि पंथ, जाति समुदाय के आधार पर किसी भी धर्मानुयायी से राज्य कोई भेद-भाव नहीं करेगा। किसी भी धर्म को राजधर्म नहीं माना जाएगा, न ही उसे कोई संरक्षण अथवा प्राथमिकता दी जाएगी। राज्य किसी भी राजधर्म की स्थापना नहीं करेगा और न ही राज्य अथवा उसका कोई अधिकरण किसी नागरिक के साथ विशेष धर्मानुयायी होने के-

भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्षता की अवधारणा पश्चिमी दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। इसका अर्थ संवैधानिक धाराओं के संदर्भ में ही समझना आवश्यक है। संविधान (1 अनुच्छेद, 25) में लिखा है कि सब नागरिकों को अंतःकरण की स्वतंत्रता और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने के समान अधिकार के साथ-साथ धार्मिक संस्थाओं के संस्थापन और संचालन का भी पूरा-पूरा अधिकार है। धर्म के आधार पर भेदभाव की मनाही है। सबको 'कानून के समक्ष समानता' और 'कानून का एक समान संरक्षण' तथा सार्वजनिक महत्त्वपूर्ण स्थानों और भेदभाव के बिना, नियोजन के समान अवसर प्रदान करके सामाजिक और कानूनी समानता की गारंटी दी गई है।

कारण कोई पक्षपातपूर्ण व्यवहार करेगा।

1949 में जब संविधान पारित हुआ तो उसमें धर्मनिरपेक्षता शब्द का प्रयोग कहीं भी (न तो प्रस्तावना में, न किसी अन्य स्थान पर) नहीं किया गया था, परंतु संविधान निर्माता इस शब्द का अभिप्राय भली-भाँति समझते थे। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर ने 1951 में हिंदू कोड बिल पर संसद में बहस का उत्तर देते समय धर्मनिरपेक्षता के विषय में कहा था—'' इसका (धर्मनिरपेक्ष राज्य का) अर्थ यह नहीं है कि हम जनता की धार्मिक भावनाओं और दृष्टिकोणों को समझने का प्रयत्न नहीं करेंगे। धर्मनिरपेक्ष सरकार का मतलब सिर्फ यह है कि संसद द्वारा कोई भी धर्म विशेष लोगों पर लादा नहीं जाएगा। संविधान केवल इसी सीमा-रेखा को पहचानता है।'' संविधान सभा में और भी कई सदस्यों ने सुस्पष्ट शब्दों में ऐसे विचारों की अभिव्यक्ति की थी।

संविधान लागू होने के 26 वर्ष बाद 1976 में बयालीसवें संशोधन के अंतर्गत संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का शब्द जोड़कर स्थिति और अधिक स्पष्ट कर दी गयी। परिणामस्वरूप अब प्रस्तावना यह है— ''हम भारत के लोग दृढ़ संकल्प होकर भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रिक गणराज्य बनाने के लिए .....।''

धर्मनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा

पाश्चात्य चिंतन में धर्म निरपेक्ष राज्य से तात्पर्य ऐसे राज्य से है जो सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार करता है तथा उन्हें सामाजिक संरक्षण प्रदान करता है— किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने में प्रत्येक व्यक्ति पूर्णत: स्वतंत्र है। सदियों के विकास काल में वहाँ इसका स्वरूप भगवान् एवं धर्म-विरोधी बन गया था।

धर्मनिरपेक्षता की भारतीय अवधारणा

भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्षता की अवधारणा पश्चिमी दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। इसका अर्थ संवैधानिक धाराओं के संदर्भ में ही समझना आवश्यक है। संविधान (1 अनुच्छेद, 25) में लिखा है कि सब नागरिकों को अंत:करण की स्वतंत्रता और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने के समान अधिकार के साथ-साथ धार्मिक संस्थाओं के संस्थापन और संचालन का भी पूरा-पूरा अधिकार है। धर्म के आधार पर भेदभाव की मनाही है। सबको 'कानून के समक्ष समानता' और 'कानून का एक समान संरक्षण' तथा सार्वजनिक महत्त्वपूर्ण स्थानों और भेदभाव के बिना, नियोजन के समान अवसर प्रदान करके सामाजिक और कानूनी समानता की गारंटी दी गई है। संविधान

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 47

में धार्मिक अल्पसंख्यकों को भी अपनी इच्छानुसार शिक्षण संस्थाएँ बना कर अपनी लिपि, भाषा तथा संस्कृति की सुरक्षा का पूर्ण अधिकार है।

इन धाराओं से यह स्पष्ट है कि हमारा संविधान धार्मिक क्षेत्र में स्वतंत्रता, समानता और सहानुभूति के आधार पर धर्म निरपेक्षता की प्रवृत्ति का निर्माण करना चाहता है। यह भी स्पष्ट है कि भारतीय संविधान राज्य और धर्म के बीच पृथकता की दीवार खड़ी नहीं करता। धर्मनिरपेक्षता का सार यही है कि राज्य किसी भी धर्म के अनुयायियों की तरफदारी करने से दूर रहेगा।

इस प्रकार भारतीय संविधान के धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र की विशेषताएँ हैं—

1. राज्य किसी धर्म से तादात्म्य नहीं करेगा, न ही किसी धर्म विशेष के नियंत्रण में रहेगा।

2. राज्य सभी को अपना धर्म चुनने तथा इस पर आचरण करने का अधिकार प्रदान करता है (इसमें नास्तिक होने का अधिकार भी शामिल है), पर धर्म के आधार पर किसी को प्राथमिकता नहीं दी जाएगी।

3. धर्म या आस्था के आधार पर राज्य किसी से कोई भेद-भाव नहीं करेगा।

4. हर नागरिक का राज्य के हर कार्यालय में दाखिल होने तथा सरकारी नौकरी का अधिकार दूसरे नागरिकों के समान है।

धर्म-प्रधान राज्य के विपरीत धर्मनिरपेक्ष राज्य में किसी भी भारतीय को बड़े से बड़ा पद पाने में जो स्वतंत्रता प्राप्त है, उसी को संविधान धर्मनिरपेक्षता की जान मानता है। यद्यपि सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता व स्वास्थ्य की दृष्टि से इस अधिकार के प्रयोग को मर्यादित किया जा सकता है। राज्य को यह भी अधिकार है कि वह धार्मिक आचरण से संबंधित आर्थिक, वित्तीय व राजनीतिक अर्थात् सेक्यूलर गतिविधियों का उचित नियमन करे। वह धार्मिक मामलों के प्रबंध में स्वतंत्रता की गारंटी देता है, वह यह भी प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को (अ)धर्मार्थ संस्थाओं की स्थापना व अनुरक्षण करने, (ब) अपने धार्मिक मामलों का स्वयं प्रबंध करने, (स) चल-अचल संपत्ति का अधिग्रहण व स्वामित्व अर्जित करने, तथा (द) कानून-सम्मत प्रकार से उस संपत्ति का प्रशासन करने का अधिकार है।

भारतीय संविधान राज्य द्वारा संचालित शिक्षा संस्थानों में किसी विशेष धर्म की शिक्षा को भी प्रतिबंधित करता है। परंतु धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म का विरोध या अधार्मिक नहीं है। इसका अर्थ है सभी धर्मों को आदर देना। एतद्नुसार प्रत्येक नागरिक को अपने मान्य सिद्धांतों में विश्वास और उपासना करने की भी स्वतंत्रता प्राप्त है। भारत में सभी धर्मों के मानने वाले सम्मान और इज्जत के साथ रहते चले आ रहे हैं इस व्यवस्था में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। 5 अगस्त, 2020 को इन सारे प्रावधानों में तनिक सा भी संशोधन, निरस्तीकरण या

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म का विरोध या अधार्मिक नहीं है। इसका अर्थ है सभी धर्मों को आदर देना। एतद्नुसार प्रत्येक नागरिक को अपने मान्य सिद्धांतों में विश्वास और उपासना करने की भी स्वतंत्रता प्राप्त है। भारत में सभी धर्मों के मानने वाले सम्मान और इज्जत के साथ रहते चले आ रहे हैं इस व्यवस्था में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। 5 अगस्त, 2020 को इन सारे प्रावधानों में तनिक सा भी संशोधन, निरस्तीकरण या न्यूनीकरण नही हुआ है। इसलिए इस खोखले नारे के पीछे केवल राजनीतिक स्वार्थ मात्र ही है सत्य कुछ भी नहीं है कि राम मंदिर के शिलान्यास से धर्मनिरपेक्षता मर गई है।

कुछ वामपंथी लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए गांधी का नाम ले रहे हैं कि गांधीवादी सेक्यूलरिज्म अब नष्ट हो गया है। गांधी जी धर्म को निकाल कर कोई रचना बनाने की नकारात्मक सोच को अपनी विचारधारा में कोई स्थान नहीं देते थे। वह जानते थे कि धर्म और आध्यात्मिकता मनुष्य के स्वभाव में निहित है। बिना धर्म के व्यक्ति पशु जैसा होता है– धर्मो विहीनः पशुभि समाना। इसलिए उन्होंने सकारात्मक मार्ग निकाला। उन्होंने यह अनुभव किया कि धार्मिक एकता से ही राष्ट्र को दृढ़ आधार प्रदान किया जा सकता है।

न्यूनीकरण नहीं हुआ है। इसलिए इस खोखले नारे के पीछे केवल राजनीतिक स्वार्थ मात्र ही है सत्य कुछ भी नहीं है कि राम मंदिर के शिलान्यास से धर्मनिरपेक्षता मर गई है। नारेबाजों ने कोई तर्क नहीं दिया कि यह कैसे मर गई है। धर्म निरपेक्षता तो हमारी राष्ट्रीयता का आधार है।

राज्य और समाज में अंतर

धर्मनिरपेक्षता की यह धारणा केवल राज्य पर ही लागू होती है किसी भी ऐसे संस्थान, संस्था या संगठन पर यह लागू नहीं होती, जो राज्य की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आता। जो लोग कम पढ़े लिखे हैं वह राज्य और समाज में अंतर नहीं कर पाते। मंच पर खड़े होकर अर्थहीन भाषण देकर केवल अपनी अल्पबुद्धि का ही प्रमाण देते हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं कि धर्मनिरपेक्ष राज्य तो बन सकता है परंतु धर्मनिरपेक्ष समाज न इस पृथ्वी पर बना है और न हाथी के सींग की भाँति बन सकता है। कुछ पाश्चात्य विचारकों, जैसे कार्लमार्क्स तथा वी.आई लेनिन ने रूस से आरंभ करके सारे विश्व में धर्म-विहीन समाज बनाने के कपोल-कल्पित प्रयास किए जिनको कम्यूनिज्म नाम दिया गया। उन्होंने कहा रिलीजन तो अफीम है इसको उखाड़ फेंको परंतु उन का खोखला सिद्धांत 75 वर्ष की अल्पवधि (1917 से 1992) में ही रेत की दीवार की भाँति ध्वस्त हो गया। 10 हजार वर्ष के मानव सभ्यता के इतिहास में 75 वर्ष कुछ मायने नहीं रखते। आज कार्लमार्क्स और लेनिन का नाम केवल राजनीति शास्त्र की पुस्तकों तक ही सीमित होकर रह गया है उसके आगे कोई उनका नामलेवा भी सारे यूरोप, अफ्रीका, मुसलिम जगत् आदि में नहीं बचा है (रहा न कुल कोई रोवन हारा) जबकि धार्मिक विभूतियों-बुद्ध, ईसामसीह, हजरत मोहम्मद साहब, गुरु नानकदेव जी, भगवान् महावीर, राम और कृष्ण के नाम सदा उतनी ही श्रद्धा के साथ लिए जाते रहेंगे जितनी श्रद्धा से अब तक लिए जाते हैं। धर्म को निकाल कर कोई समाज ऐसे ही असंभव है जैसे आकाश-कमल। सारी दुनिया किसी न किसी धर्म की मान्यताओं और रीति-रिवाजों का अनुसरण करती है। जो कम्यूनिस्ट भारत में बचे रह गए हैं उनके पास कोई वैचारिक आधार नहीं बचा है। उनका सिद्धांत अब यही रह गया है कि खोखले नारे लगाकर जनता को भ्रमित करो। यह सांस्कृतिक दृष्टि से पतित वामपंथी ही आज जनता को भड़का रहे हैं कि धर्मनिरपेक्षता मर गई। जनता को इस भ्रांतिमूलक प्रापैगंडा से बचाना ही राष्ट्रहित में है।

गांधीवाद की आड़ लेते वामपंथी

कुछ वामपंथी लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए गांधी का नाम ले रहे हैं कि गांधीवादी सेक्यूलरिज्म अब नष्ट हो गया है। उनकी बात ऐसी लगती है जैसे शैतान बाईबल पढ़ रहा हो या रावण

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 49

1919-22 के असहयोग तथा खिलाफत आंदोलन के अवसर पर गांधीजी ने पहली बार हिंदू और मुसलिम संप्रदायों को संयुक्त करने का प्रयत्न किया। अली बंधुओं के समक्ष उन्होंने प्रस्ताव रखा कि प्रत्येक मंदिर और मसजिद पर यह लिखवा दिया जाए -'ईश्वर अल्लाह एक हैं, राम रहीम एक हैं।' हिंदू अपने देवालयों में गीता, रामायण इत्यादि के साथ कुरान शरीफ का भी पाठ करें और मुसलमानों को भी प्रेरित किया जाए कि मसजिद में रामायण, गीता आदि का भी प्रसार हो। साथ ही यह भी कहा कि मुसलिम भाई हिंदुओं के हर त्योहार में खुलकर भाग लें और हिंदू ईद, कुर्बानी की ईद, मुहर्रम आदि में उनके कंधे से कंधा मिलाकर चलें परंतु अड़ियल मुसलिम मुल्लाओं ने यह सारा प्रस्ताव यह कह कर ठुकरा दिया कि मसजिद पर एक भी शब्द ऐसा नहीं लिखने देंगे जो कुरान शरीफ में नहीं है।

राम कथा सुना रहा हो। गांधी जी धर्म को निकाल कर कोई रचना बनाने की नकारात्मक सोच को अपनी विचारधारा में कोई स्थान नहीं देते थे। वह जानते थे कि धर्म और आध्यात्मिकता मनुष्य के स्वभाव में निहित है। बिना धर्म के व्यक्ति पशु जैसा होता है— धर्मो विहीन: पशुभि समाना। इसलिए उन्होंने सकारात्मक मार्ग निकाला। उन्होंने यह अनुभव किया कि धार्मिक एकता से ही राष्ट्र को दृढ़ आधार प्रदान किया जा सकता है।

1919–22 के असहयोग तथा खिलाफत आंदोलन के अवसर पर उन्होंने पहली बार हिंदू और मुसलिम संप्रदायों को संयुक्त करने का प्रयत्न किया। अली बंधुओं के समक्ष उन्होंने प्रस्ताव रखा कि प्रत्येक मंदिर और मसजिद पर यह लिखवा दिया जाए –'ईश्वर अल्लाह एक हैं, राम रहीम एक हैं।' हिंदू अपने देवालयों में गीता, रामायण इत्यादि के साथ कुरान शरीफ का भी पाठ करें और मुसलमानों को भी प्रेरित किया जाए कि मसजिद में रामायण, गीता आदि का भी प्रसार हो। साथ ही यह भी कहा कि मुसलिम भाई हिंदुओं के हर त्योहार में खुलकर भाग लें और हिंदू ईद, कुर्बानी की ईद, मुहर्रम आदि में उनके कंधे से कंधा मिलाकर चलें परंतु अड़ियल मुसलिम मुल्लाओं ने यह सारा प्रस्ताव यह कह कर ठुकरा दिया कि मसजिद पर एक भी शब्द ऐसा नहीं लिखने देंगे जो कुरान शरीफ में नहीं है। गांधी एक प्रभावहीन फरिश्ते की भांति शून्य में अपने उज्ज्वल पंख फड़फड़ाते रहे जहाँ उन के प्रस्तावों का अनुपालन करने वाला एक भी उनका अनुयायी खड़ा नहीं हुआ। अब जो गांधीजी के धर्मनिरपेक्षता सिद्धांत की दुहाई दे रहे हैं उनको हमारा परामर्श है कि मंच पर खड़े होकर गाल बजाने की बजाए ब्रुश हाथ में लेकर गांधीजी के स्वप्न को साकार करके दिखाएँ। व्यर्थ की नारेबाजी से राष्ट्र का निर्माण नहीं होता। भारत राज्य तो संविधान में दिए हुए धर्म–निरपेक्षता के प्रावधानों पर वचनबद्ध भी है और कटिबद्ध भी। उन पर राम मंदिर निर्माण से किसी प्रकार की भी आँच नहीं आती है। हमारी धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय एकीकरण का एक साकार विचार है जिसमें राष्ट्रीय जीवन को पल्लवित करने की क्षमता है। मंदिर बनें, मसजिद बनें, चर्च बनें या गुरुद्वारे बनें इनके निर्माण से भारतीय संविधान का यह दृढ़ आधार हिल नहीं सकता क्योंकि संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार अपरिवर्तनीय हैं।

लेखक कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के पूर्व अध्यक्ष है।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 50

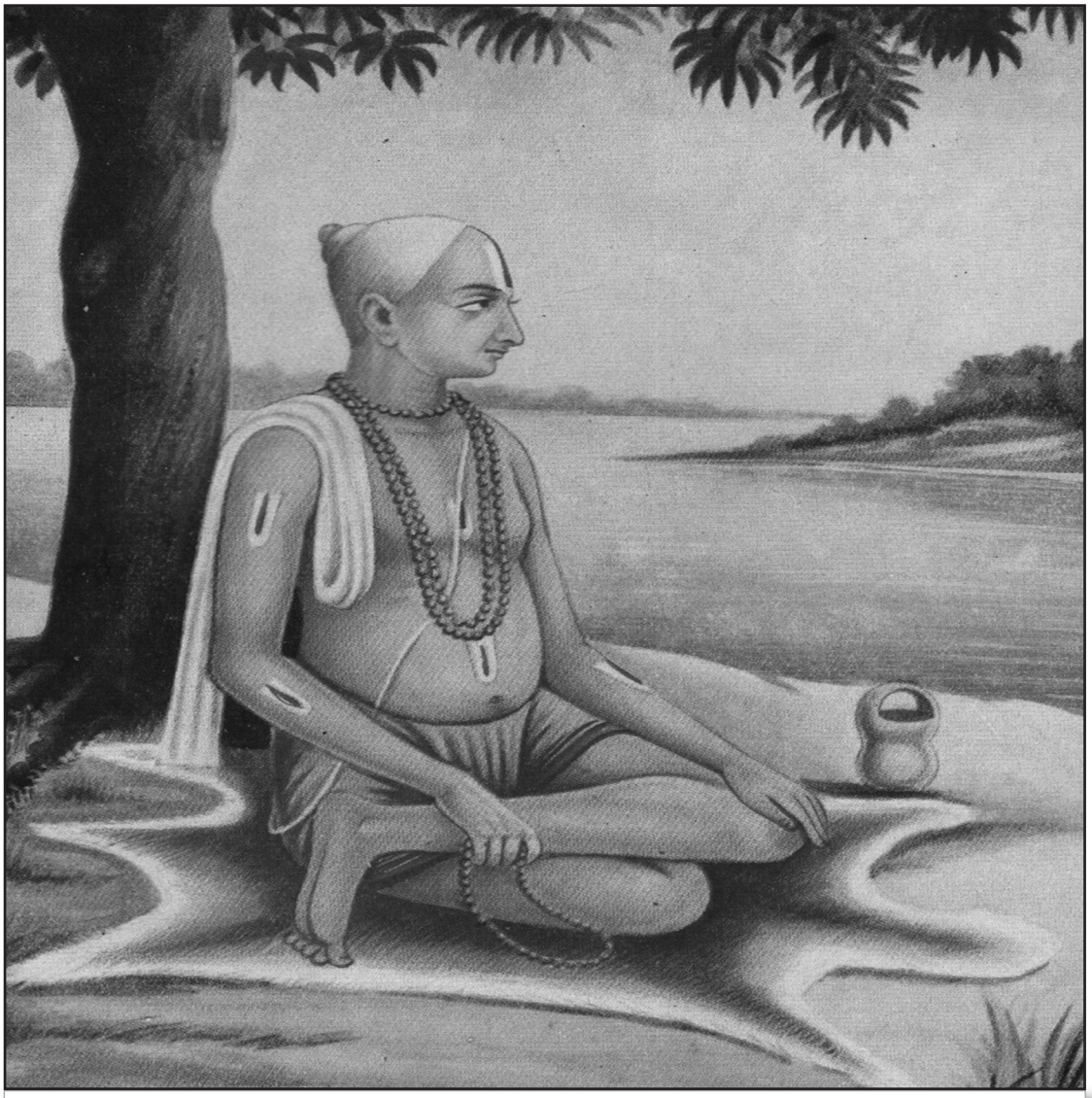

गोस्वामी तुलसीदास जी कृत श्रीरामचरितमानस संपूर्ण मानवता के लिए भारतीय संस्कृति की एक अनुपम धरोहर है। गोस्वामी जी ने श्री रामचरितमानस की रचना ऐसे कालखंड में की जब भारत की जनता मुस्लिम आक्रांताओं के उत्पीड़न व अत्याचारों से पीड़ित और बेबस थी और उन्हें इससे मुक्ति का कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। इन आततायियों के सामने भारत के लोग साधनहीन होने के साथ ही संगठित भी नहीं थे। ऐसी विपदा के समय में उन्होंने मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम के चरित्र के माध्यम से सत्यमार्ग पर अडिग रहने और संगठित होकर सामर्थ्यवान शत्रु पर विजय प्राप्त करने का जो मंत्र दिया वह भारतीय संस्कृति का मूल आधार है और पूरे विश्व के लिए एक धरोहर है।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 51

डॉ. चंदन कुमारी

श्रीरामचरितमानस में निहित संस्कृति के सूत्र

श्रीरामचरितमानस भारतीय संस्कृति व मानवीय चेतना का अपूर्व महाकाव्य है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास जी ने मध्ययुगीन भारत में पराजित, हताश एवं दिग्भ्रमित हिंदू समाज के पुनरुत्थान का भगीरथ प्रयास किया है। राम के उज्ज्वल चरित्र के माध्यम से हमारी सनातन संस्कृति को आलोकित किया है। यह विलक्षण काव्य सर्वहितकारिता की भावना से उत्प्रेरित है और आज भी आदर्श जीवनमूल्यों का मंगल संदेश देता है।

वैश्विक स्तर पर, स्वेच्छाचारी शक्तियों से संघर्षशील राम का चरित्र भारतीय संस्कृति का परिचायक है। इस चरित्र को केंद्र में रखकर निरंतर रचनाएँ की जा रही हैं। इस संदर्भ में तुलसी कृत 'श्रीरामचरितमानस' की महत्ता निर्विवादित रूप से प्रतिष्ठित है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''भारतीय जनता की विविध साधनाओं की सबसे सुंदर परिणति'' [1] ही भारतीय संस्कृति है। सीधे शब्दों में संस्कृति को मनुष्यता और पाश्विकता के मध्य की विभाजक रेखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। एक ही परिस्थिति में दो भिन्न आचार-विचार वाले व्यक्तियों का व्यवहार एकदम अलग हो सकता है। इस अलग व्यवहार के पीछे कार्यरत कारक तत्त्व का संबंध सांस्कृतिक मूल्यों से है। एक

संस्कृति प्रेम और अखंडता की अलख जगाकर मानव समाज को शील-गुण संपन्न बनाती है। यह विघटन और बिखराव को रोकने वाली प्रवृत्ति है जिसके प्रति प्रगतिगामी मानसिकता लगातार अरुचि उत्पन्न कर रही है और अनेक भयावह स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। ''पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें। वाला भाव जो कभी भारत-भू के कण-कण में व्याप्त था अब तो यदा-कदा ही देखने को मिलता है।

भूखा पशु भोजन प्राप्ति के लिए प्राय: झपटता है, दूसरों की रोटी छीनता है, बुभुक्षु श्रेणी के मनुष्यों का आचरण भी कुछ ऐसा ही होता है। बुभुक्षु ही क्यों, अपनी सात पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित करने की महत्त्वाकांक्षा पालने वाले लोग भी बहुधा इस तरह की प्रवृत्ति में रत हैं। ऐसे में संस्कृति का स्थान यहाँ विकृति ने ले लिया है। संस्कृति का वास्तविक अर्थ, उसका भीतरी तत्त्व सब विस्मृत हो रहा है! संस्कृति को जिंदा रखने का दंभ बढ़ रहा है और संस्कृति भीतर से मानोँ सूखती जा रही हो! जैनेंद्र कुमार के अनुसार ''जहाँ हम अपना उपयोग स्वेच्छा से दूसरे को देते हैं और प्रतिदान की अपेक्षा नहीं रखते वहाँ संस्कृति का सारांश आ जाता है।'' [2] आत्म परिष्कार और मानसिक दृढ़ता ही भारत की संस्कृति का पर्याय है और भारतीयता का परिचायक भी। दिनकर की कविता 'किसको नमन करूँ' (1963) में यह स्थिति सुंदरतम रूप से अभिव्यक्ति पा रही है, द्रष्टव्य है—

''भारत नहीं स्थान का वाचक,
गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमंडल भर का है।
जहाँ एकता अखंडित, जहाँ प्रेम का स्वर है,
देश-देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर है।''

संस्कृति प्रेम और अखंडता की अलख जगाकर मानव समाज को शील-गुण संपन्न बनाती है। यह विघटन और बिखराव को रोकने वाली प्रवृत्ति है जिसके प्रति प्रगतिगामी मानसिकता लगातार अरुचि उत्पन्न कर रही है और अनेक भयावह स्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। ''पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें'' [3] वाला भाव जो कभी भारत-भू के कण-कण में व्याप्त था अब तो यदा-कदा ही देखने को मिलता है। जिस माँ के कारण राम को वनवास मिला, राम ने उनको कोई दोष नहीं दिया! मान सारा माँ का और दोष, समय और भाग्य का, द्रष्टव्य है—

''प्रथम राम भेंटी कैकेई ।
सरल सुभायँभगति मति भेई।।''
पग परि कीन्ह प्रबोधुबहोरी।
काल करम बिधि सिर धरि खोरी।।'' [4]

एक सच्चा मित्र पाकर सारा मानव समुदाय प्रफुल्लित है, हर्षित है और आत्मगौरव से भर उठता है। आज कौन किसका स्वार्थ रहित सखा है? कौन है जो मित्र की विपत्ति पर दु:खी हो उठता है? विभीषण अधीर हो गए थे रणभूमि में राम के लिए! रथारूढ़ रावण के समक्ष पाँव पयादे राम को देखकर अधीर विभीषण को राम ने विजय का जो रहस्य बताया उसमें वर्तमान समस्याओं का सारा निदान उपलब्ध है। उन्नतिकामी मानव किसी भाँति बस अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहता है। अपने और अपने दायरे के भीतर रहने वालों के लिए सारी सुविधाएँ जुटा लेना चाहता है। सारा ऐश्वर्य जुटा लेना चाहता है। विडंबना यह है कि बचपन से ही अपना उदर भरने और आगे बढ़ने तथा सबको पीछे छोड़कर अकेले शिखर पर पहुँचने की शिक्षा दी जा रही है।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 53

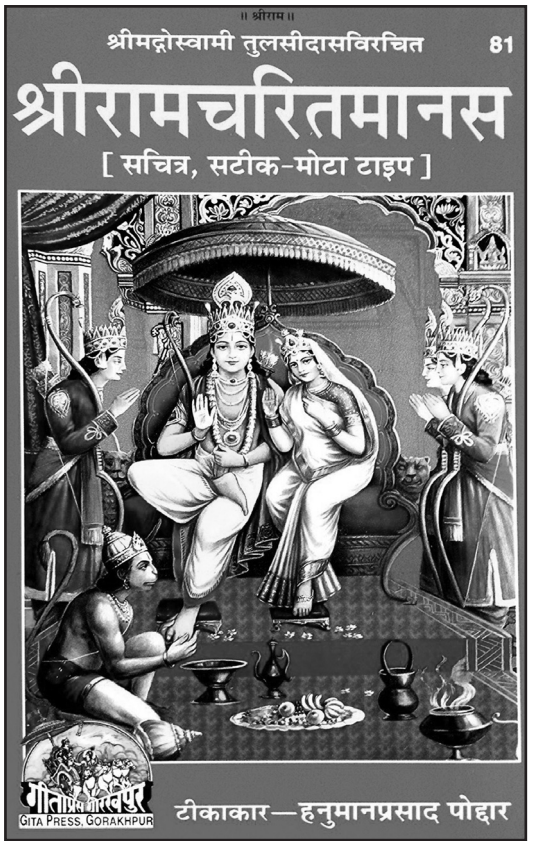

गिरे हुए को उठाते हुए साथ लेकर चलनेवाला भाव जब बचपन सुनेगा ही नहीं तो आगे करेगा कैसे? सांस्कृतिक मूल्यों का पाठ शायद कंप्यूटर युग में हास्यास्पद लगता हो लेकिन इस तथ्य को कैसे नकारेंगे कि आज भी पूरी दुनिया भारत की आध्यात्मिकता और इसकी अनूठी संस्कृति से रीझ भारत की ओर अपना रुख करती है और केवल रुख ही नहीं करती वरन् अपने पठन-पाठन और जीवन में उसे शामिल करती है। ऐसा करते हुए उन्हें पिछड़ेपन के तमगे का भय नहीं सताता है। वे भारत के सांस्कृतिक मूल्यों को भीतर तक जानना चाहते हैं क्योंकि उन्हें भारत को जानना है। अपने भारत को हमने कितना जाना? भारत से पहले स्वयं को कितना जाना? प्रगति के वास्तविक अर्थ को हमने कितना समझा? यह सांस्कृतिक मूल्य क्या है? ''सांस्कृतिक मूल्यों से अभिप्राय उन तत्त्वों का है जो सत्य के संधान और सिद्धि में सहायक होते हैं, जीवन की कल्याण साधना अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक विकास में योगदान करते हैं और सौंदर्य चेतना को जाग्रत एवं विकसित करते हैं।'' [5] विभीषण की अधीरता के प्रत्युत्तर में राम ने विजय रथ के माध्यम से जिन संस्कृति सूत्रों की चर्चा की वह सर्वतोमुखी विजय का सहज और सर्व सुलभ मार्ग है।

''नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधिजितब बीर बलवाना।।''
सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे ।
छमा कृपा समता रजुजोरे ।।
ईसभजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ।।
दान परसुबुधि सक्ति प्रचंडा ।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा ।।

शौर्य, धैर्य, सत्य, सदाचार, बल, विवेक, इंद्रिय निग्रह, परोपकार, क्षमा, दया, समदर्शिता, इष्ट निष्ठा, वैराग्य, संतोष, दान बुद्धि, श्रेष्ठ विज्ञान, पापरहित स्थिर मन, शम, यम, नियम, ब्राह्मण और गुरु के प्रति अखंड श्रद्धा इत्यादि सात्विक मूल्य ही संस्कृति सूत्र भी हैं जिन्हें आत्मसात करनेवाला प्राणी हमेशा विजयी होता है। ये सूत्र ही 'वसुधैवकुटुंबकम्' का आधार हैं। इनका अभाव सभी समस्याओं की जड़ है।

अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ।।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें ।
जीतनकहँ न कतहुं रिपु ताकें ।।
महा अजय संसार रिपु जीतिसकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़सुनहु सखा मतिधीर।।''[6]

शौर्य, धैर्य, सत्य, सदाचार, बल, विवेक, इंद्रिय निग्रह, परोपकार, क्षमा, दया, समदर्शिता, इष्ट निष्ठा, वैराग्य, संतोष, दान बुद्धि, श्रेष्ठ विज्ञान, पापरहित स्थिर मन, शम, यम, नियम, ब्राह्मण और गुरु के प्रति अखंड श्रद्धा इत्यादि सात्विक मूल्य ही संस्कृति सूत्र भी हैं जिन्हें आत्मसात करनेवाला प्राणी हमेशा विजयी होता है। ये सूत्र ही 'वसुधैवकुटुंबकम्' का आधार हैं। इनका अभाव सभी समस्याओं की जड़ है।

संस्कृति सूत्रों का सार 'सत्य' में निहित है जिसकी स्थापना 'नहिं असत्य सम पातक पुंजा' और 'धर्म न दूसर सत्य समाना' कहकर रामचरितमानस में भी की गई है। इस सत्य के साथ यदि आत्मविश्वास, अनुशासन, उत्साह, त्याग, परस्पर सहयोग, समदर्शिता, सहअस्तित्व और समानता की भावना समाविष्ट हो जाए तो सोने में सुगंध वाली स्थिति ही उत्पन्न होगी न कि मनुष्यता को रुलाने वाली व्यर्थ की अराजक और भयावह परिस्थितियाँ।

सत्य ही धर्म है

भारतीय संस्कृति में सत्य सर्वोच्च लोकमूल्य के रूप में ईश्वर के समकक्ष प्रतिष्ठित है। समूची रामकथा का मुख्य आधार बिंदु भी सत्य ही है । ''रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाहुंबरु वचन न जाई।'' रघुकुल की रीति को निभाते हुए राम पिता के दिए वचन रूपी सत्य की रक्षा करते हैं। उनकी इस सत्य रक्षा से जन कल्याण स्वत: सध जाता है। एक सार्वभौम धर्म का आधार सत्य ही हो सकता है। सत्य के संदर्भ में अपने अनुभवों को शब्दबद्ध करते हुए बापू लिखते हैं —

My uniform experience has convinced me that there is no other God than Truth- the little fleeting glimpses therefore, that I have been able to have of truth can hardly convey an idea of the indescribable lustre of truth, a million time more intense than that of the Sun we daily see with our eyes- inface what I have caught is only the faintest glimmer of that mighty effulgence. [7]

(सतत् अनुभव ने मेरा यह विश्वास दृढ़ कर दिया है कि ईश्वर सत्य के अलावा और कुछ नहीं है.... सत्य की जो क्षणिक झलकियाँ .... मैं पा सका हूँ, उनसे सत्य के अवर्णनीय तेज का वर्णन करना संभव नहीं है, सत्य का तेज नित्य दिखाई देने वाले सूर्य के प्रकाश से लाखों गुना प्रखर हैं। वस्तुत: मैं उस अतुल प्रभा की बहुत हल्की झलक ही पा सका हूँ)। कहा जा सकता है कि सभी संस्कृति सूत्रों का सार 'सत्य' में निहित है जिसकी स्थापना 'नहिं असत्य सम पातक पुंजा' और 'धर्म न दूसर सत्य समाना' कहकर श्रीरामचरितमानस में भी की गई है। इस सत्य के साथ यदि आत्मविश्वास, अनुशासन, उत्साह, त्याग, परस्पर सहयोग, समदर्शिता, सहअस्तित्व और समानता की भावना समाविष्ट हो जाए तो सोने में सुगंध वाली स्थिति ही उत्पन्न होगी न कि मनुष्यता को रुलाने वाली व्यर्थ

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 55

की अराजक और भयावह परिस्थितियाँ।

व्यक्ति सर्व गुण संपन्न नहीं हो सकता लेकिन अपने भीतर की नकारात्मक प्रवृत्तियों पर काबू कर उसे सात्विकता की ओर मोड़ अवश्य सकता है यदि उसका स्वयं पर भरोसा है और भरोसा उस शक्ति पर भी है जिसने इस सुंदर संसार का निर्माण किया है, जिसे हर-पल हर जगह की खबर है और जो सबको मित्र दृष्टि से देखते हुए कर्मानुसार फल की व्यवस्था भी करता है।

वर्तमान समाज में संशय बढ़ रहा है और आस्था घट रही है। यह स्थिति घातक है। संघर्षशील राम सब पर विश्वास करते हैं। सबसे प्रेम करते हैं। सबका समादर करते हैं। सभी का राम के प्रति भी वैसा ही भाव है पर राम सच में कहाँ रह पाते हैं? गुरु वसिष्ठ से वनवास काल में राम ने जब अपने योग्य निवास स्थल के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने कहा—

''जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु
तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन
सो राउर निज गेहु।।'' [8]

मनुष्य सोचकर या बिना सोचे जो भी करता है स्वयं को सर्वोच्च बनाने के लिए। जो सर्वोच्च है उसे पाना कितना सरल है कुछ नहीं चाहिए बस सरल स्नेह ही काफी है। हम हैं कि अपनी सरलता को दबाए हुए खुद पर जटिलता हावी किए जा रहे हैं कि कहीं सामने वाला हमारा कद न भाँप ले। एक बार कोशिश की जाए सत्य-प्रेम में रमकर और सारे ओढ़े हुए मुखौटों को तजकर इस दुनिया को देखने की अपनी आँखों से, अपने विचारों से बिना किसी पूर्वाग्रह के ...., इस अकाट्य सत्य से परिचित होकर कि पंचभूत वाली यह काया आखिर में पंचभूतों में ही मिलेगी! 'स्वयं उठकर सबको उठाना' सिखाता है श्रीरामचरितमानस। नैतिकता में विश्वास और उसके अनुकरण में हर समस्या का समाधान छिपा है। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एथिक्स (1914) में भी स्पष्ट किया गया है कि हर व्यक्ति के भीतर दैविक अंश विद्यमान है। दैविक अंश से आशय सत्व गुण का है जिसकी वृद्धि में नैतिक मूल्य सहायक होते हैं। प्रसिद्ध बुद्धिवादी दार्शनिक कांट भी स्वीकार करते हैं कि मानव कोरे तर्कवाद के सहारे अपना नैतिक कद ऊँचा नहीं कर सकता है। मनुष्य के भीतर मनुष्यता रक्षण की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाली इस दिव्यता का संचार करने की शक्ति इन संस्कृति सूत्र रूपी नैतिक मूल्यों में ही निहित है।

लेखिका रामकथा की शोधार्थी हैं।

संदर्भ

1. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद,1981, अशोक के फूल, इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन, पृ 58।
2. कुमार, जैनेंद्र.1982, साहित्य और संस्कृति, दिल्ली: पूर्वोदय प्रकाशन, पृ 219।
3. तुलसीदास, छिहत्तरवाँ पुनर्मुद्रण, श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर: गीता प्रेस, अयोध्याकांड 73/4।
4. वही, 243/4।
5. डॉ. नगेंद्र, 1974, नई समीक्षा नए संदर्भ, नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ 80 ।
6. तुलसीदास, छिहत्तरवाँ पुनर्मुद्रण, श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर: गीता प्रेस, लंकाकांड 79/2-6, 80क ।
7. Gandhi, Mahatma- The story of my experiment with truth, P. 615.
8. तुलसीदास, छिहत्तरवाँ पुनर्मुद्रण, श्रीरामचरितमानस, गोरखपुर: गीता प्रेस, अयोध्याकांड, दोहा, 131।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 56

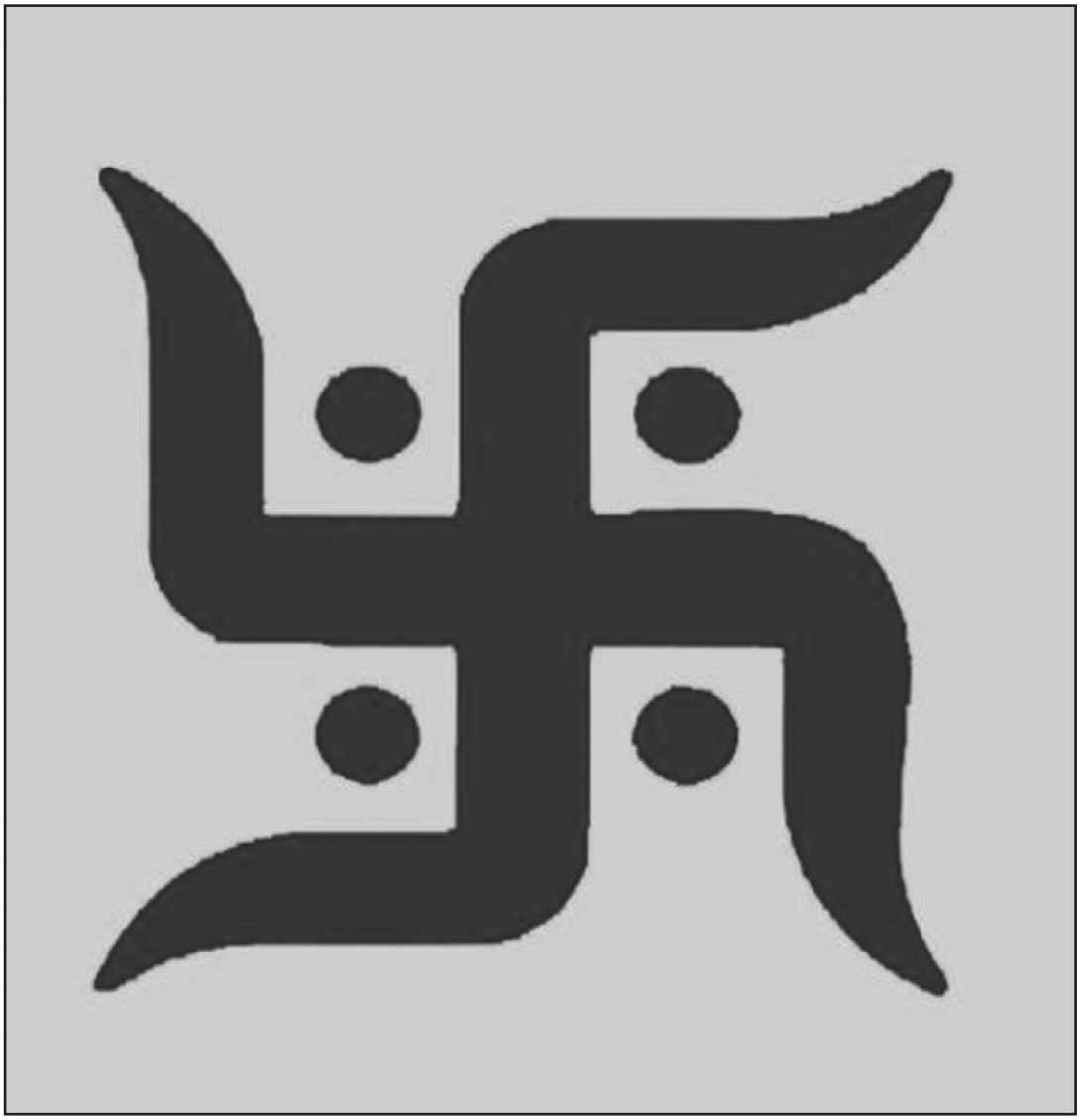

भारतीय सनातन परंपरा में प्रतीकों का विशेष महत्त्व है। मांगलिक अवसरों पर शंख, चक्र, गदा, कमल आदि अनेकानेक प्रतीकों का प्रयोग सहस्त्रों वर्ष से किया जा रहा है, ऐसा ही एक मांगलिक प्रतीक है 'स्वस्तिक'। स्वस्तिक का प्रयोग भारत के अलावा विश्व के अनेक देशों में किया जाता रहा है, इनमें से कई देशों में सामाजिक व सांस्कृतिक बदलावों के कारण अब स्वस्तिक का प्रयोग नहीं किया जाता, लेकिन भारत में सनातन परंपरा की अबाध निरंतरता के चलते स्वस्तिक का प्रयोग आज भी शुभ और मंगलकारी माना जाता है और सभी मांगलिक अवसरों पर इसका आलेखन किया जाता है। प्रस्तुत है स्वस्तिक के इसी महत्त्व को बताता श्री शंकरलाल महेश्वरी का यह आलेख–

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 57

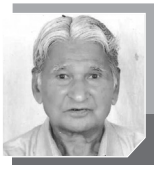

शंकर लाल महेश्वरी

स्वस्तिक का महत्त्व

भारतीय संस्कृति के मांगलिक प्रतीकों में स्वस्तिक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विशेष मांगलिक शुभ अवसरों पर इस प्रतीक का प्रयोग अवश्य ही किया जाता है। भारतीय धर्म ग्रंथों तथा वैदिक साहित्य में इस प्रतीक का विशिष्ट प्रयोग हुआ है। शादी-विवाह, गृह प्रवेश, जन्मदिन, देवपूजन, व्यापार, बही-खाता पूजन, शिक्षा का शुभारंभ एवं मुंडन संस्कार आदि में स्वस्तिक पूजन अनिवार्य समझा जाता है। किसी भी प्रकार के शुभ कार्य का प्रारंभ स्वस्तिक पूजन से ही संपादित होता हैं। महिलाएँ हाथों में मेहंदी से स्वस्तिक चिह्न बनाती हैं तथा यह प्रतीक दुष्टात्माओं व दैविक कोप से मुक्ति प्रदान करने वाला माना जाता है।

'स्वस्तिक' शब्द का निर्माण 'सुअसक' से हुआ है 'सु' का अर्थ अच्छा, 'अस' का अर्थ सत्ता या अस्तित्व और 'क' का अर्थ कर्ता या करने वाले से है। इस प्रकार स्वस्तिक शब्द का आशय हुआ अच्छा या मंगल करने वाला। इसमें विश्व कल्याण की भावना सन्निहित है तथा 'वसुधैव कुटुंबकम्' का परिचायक हैं। पतंजलि योग में भी इस प्रतीक का विशेष विश्लेषण हुआ है।

प्रचीन मूर्तियों, मंदिरों, शिलालेखों आदि में यह चिह्न अंकित रहता है। अमर कोष में स्वस्तिक शब्द की व्याख्या विशेष रूप से की गई है। 'स्वस्तिक सर्वतोऋ' अर्थात् सभी दिशाओं में सबका कल्याण हो। स्वस्तिक शब्द की निरुक्ति है- स्वस्तिक क्षेमकायति

इति स्वस्तिक: अर्थात् कुशलक्षेम या कल्याण का प्रतीक स्वस्तिक है। हिंदू परंपरा में स्वस्तिक को सर्वमंगल कल्याणकारी सर्वव्यापक स्वीकारा है। असीम शक्ति, सौंदर्य चेतना तथा सर्व सुखकारी प्रतीक स्वस्तिक को माना गया है।

स्वस्तिक चिह्न की बनावट ऐसी है कि वह दसों दिशाओं से विशेष ऊर्जा को अपनी ओर खींचता है इसीलिए सर्वप्रथम शुभकार्यों के लिए स्वस्तिक चिह्न बनाया जाता है। कहा गया है कि आम की लकड़ी और स्वस्तिक दोनों का संगम मंगलकारी है एवं आम की लकड़ी का स्वस्तिक उपयोग किया जाए तो इसका सुप्रभाव पड़ता है। इसका प्रयोग घर में वास्तु दोष का दूर करता है। घर के जिस कोण में वास्तु दोष है उसमें आम की लकड़ी का बना स्वस्तिक स्थापित करने से दोष हरण करता है। घर के प्रवेश द्वार तथा पूजा स्थल पर भी स्वस्तिक का अंकन प्रभावकारी होता है।

सोना, चाँदी, तांबा अथवा पंचधातु से बना स्वस्तिक घर की चौखट पर लगाने पर सुखद परिणाम मिलते हैं। आत्मतुष्टि के लिए रोली, सिंदूर तथा हल्दी से बनाए गए स्वस्तिक प्रभावपूर्ण होते हैं। पारिवारिक कलह शमन तथा अशांति निवारण के लिए स्वस्तिक यंत्र रवि-पुष्य, गुरु-पुष्य तथा दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी यंत्र के साथ लगाना अधिक लाभप्रद मना गया है। गाय के पंचगव्य (दूध, दही, घी, गोमूत्र व गोबर) को समान अनुपात में गंगा जल में मिलाकर आम या अशोक के पत्तों से व्यापारिक केंद्रों तथा औद्योगिक संस्थानों पर प्रतिदिन छिड़काव करने से विशेष ऊर्जा का संचार होता है।

प्राचीनकाल में किसी भी श्रेष्ठ कार्य का शुभारंभ मंगलाचरण लिखकर किया जाता था, चूंकि सामान्य जन के लिए मंगलाचरण लिखना संभव नहीं था अत: ऋषियों ने स्वस्तिक चिह्न का निर्माण किया, जो सुविधापूर्वक अंकित किया जा सके और कार्य सानंद संपन्न हो।

विदेशों में स्वस्तिक

छठीं सदी में चीन के राजा 'वू' ने सूर्य के प्रतीक के रूप में स्वस्तिक को मान्यता प्रदान की थी। व्यापारियों, यात्रियों तथा पर्यटकों के माध्यम से ही यह प्रतीक चिह्न विश्व के कई देशों में प्रसारित हुआ। चीन के तांग वंश के इतिहासकार कुंगत्से ने लिखा है '' प्रति वर्ष सातवें महीने के सातवें दिन मकड़ियों को लाकर उनके जाले में स्वस्तिक चिह्न बनवाते हैं अगर किसी को जाले में पहले ही यह चिह्न बना हुआ मिल जाए तो उसे सौभाग्य सूचक माना जाता है। तिब्बत में मृतकों के साथ स्वस्तिक प्रतीक को रखने की परंपरा रही है। रेड इण्डियन्स इस प्रतीक को सौभाग्य सूचक मानते हैं तथा इसका प्रयोग आभूषणों में भी किया जाता है।

जापान में प्राप्त भगवान बुद्ध की मूर्तियों पर भी यह चिह्न उकेरा गया है। आस्ट्रिया के संग्रहालय में 'अपोलो' देवता के मस्तक पर स्वस्तिक का चिह्न है। प्राचीन शस्त्रागारों के सामने तथा अस्थि कलशों और मिट्टी के बर्तनों पर यह चिह्न अंकित हैं। टर्की में 2200 वर्ष पुराने ध्वज पताकाओं पर यह चिह्न मिले हैं। संसार के विभिन्न देशों-आस्ट्रिया, जापान, स्कॉटलैंड, यूरोप तथा मैक्सिको में भी खुदाई में प्राप्त मिट्टी के बर्तनों पर स्वस्तिक चिह्न अंकित हैं।

सिंधु घाटी सभ्यता

सिंधु घाटी से प्राप्त मुद्राओं, बर्तनों आदि पर स्वस्तिक चिह्न अंकित हैं। उस समय लोग सूर्य पूजक थे और इस प्रतीक को सूर्य का प्रतीक माना गया था। पाणिनी व्याकरण और मत्स्य पुराण आदि

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 59

ग्रंथों में भी इस चिह्न का विषद् विवेचन हुआ है। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दि की खण्डगिरि और उदयगिरि की रानी की गुफाओं में स्वस्तिक चिह्न मिले हैं। पाणिनी की व्याकरण में भी इसका उल्लेख है।

पाली भाषा में स्वस्तिक को साक्षियों के नाम से पुकारा गया हैं जो बाद मे साखी या साकी प्रचलित हो गए। जैन परंपरा के मांगलिक प्रतीक 'अष्टकमंगल' दृव्यों में स्वस्तिक का सर्वोपरि स्थान है। स्वस्तिक की चार भुजाओं को चार प्रकार से मंगल प्रतीक माना गया है वे हैं अरहंत-मंगल, सिद्ध-मंगल, साहू-मंगल और केवलि पण्णतो धम्मो मंगल।

स्वस्तिक रचना

स्वस्तिक में एक दूसरे को काटती हुई दो सीधी रेखाएँ होती हैं जो आगे चलकर मुड़ जाती हैं इसके बाद में भी अपने सिरों पर और आगे की तरफ मुड़ी हैं। स्वस्तिक की आकृति दो प्रकार की होती हैं जिसमें पहला स्वस्तिक जिसमें रेखाएँ आगे की और संकेत करती हुई हमारे दांयी और मुड़ जाती हैं। इसे दक्षिणावर्त स्वस्तिक कहते हैं जो हमारी प्रगति का सूचक हैं। दूसरी आकृति में रेखाएँ पीछे की और संकेत करती हुई हमारे बांयी और मुड़ती हैं इसे वामावर्त स्वस्तिक कहते है। इसे अशुभ माना गया हैं। जर्मन के तानाशाह हिटलर की पताका में वामावर्त स्वस्तिक अंकित था।

ब्रह्मांड का प्रतीक

स्वस्तिक की दो भुजाएँ पुरुष और प्रकृति की परिचायक हैं। भारतीय धर्मग्रंथों में इस चिह्न को विष्णु, सूर्य, सृष्टिचक्र तथा ब्रह्मांड का प्रतीक माना गया है। कुछ संतों ने इसे गणेश का प्रतीक मानकर वंदना के लिए प्राथमिकता दी है। इसे ही सुदर्शन चक्र का प्रतीक भी माना गया है। यास्काचार्य ने इसे ब्रह्मा का रूप माना है। इसकी चार भुजाओं को चार वर्णों की एकता का प्रतीक माना गया है तथा इन्हें ब्रह्मा के चार मुख, चार हाथ और चार वेदों के रूप में भी अंगिकार किया गया है।

यह चिह्न धनात्मक चिह्न या प्लस को प्रकट करता है जो हमारी समृद्धि का प्रतीक है। स्वस्तिक की खड़ी भुजा को ज्योर्तिलिंग तथा आड़ी भुजा को विश्व के विस्तार का सूचक माना जाता है। यह चारों भुजाएँ चारों दिशाओं के कल्याण की भावना को व्यक्त करती हैं। विद्युत सिद्धांत के अनुसार इन दो भुजाओं को निगेटिव और पॉजीटिव की संज्ञा दी गई है जिनके मिलने से विशेष ऊर्जा सृजित होती है। स्वस्तिक के चारों और लगाए जाने वाले बिंदुओं को चार दिशाओं के रूप में माना गया है। कहा गया है कि चर्तुमास में स्वस्तिक व्रत करने तथा मंदिर में अष्टक दल से स्वस्तिक बनाकर पूजन करने से महिलाओं के सौभाग्य में वृद्धि होती है। इस प्रकार यह मांगलिक चिह्न देश-विदेश में सदैव पूजनीय रहा है।

लेखक राजस्थान के
पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी हैं।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 60

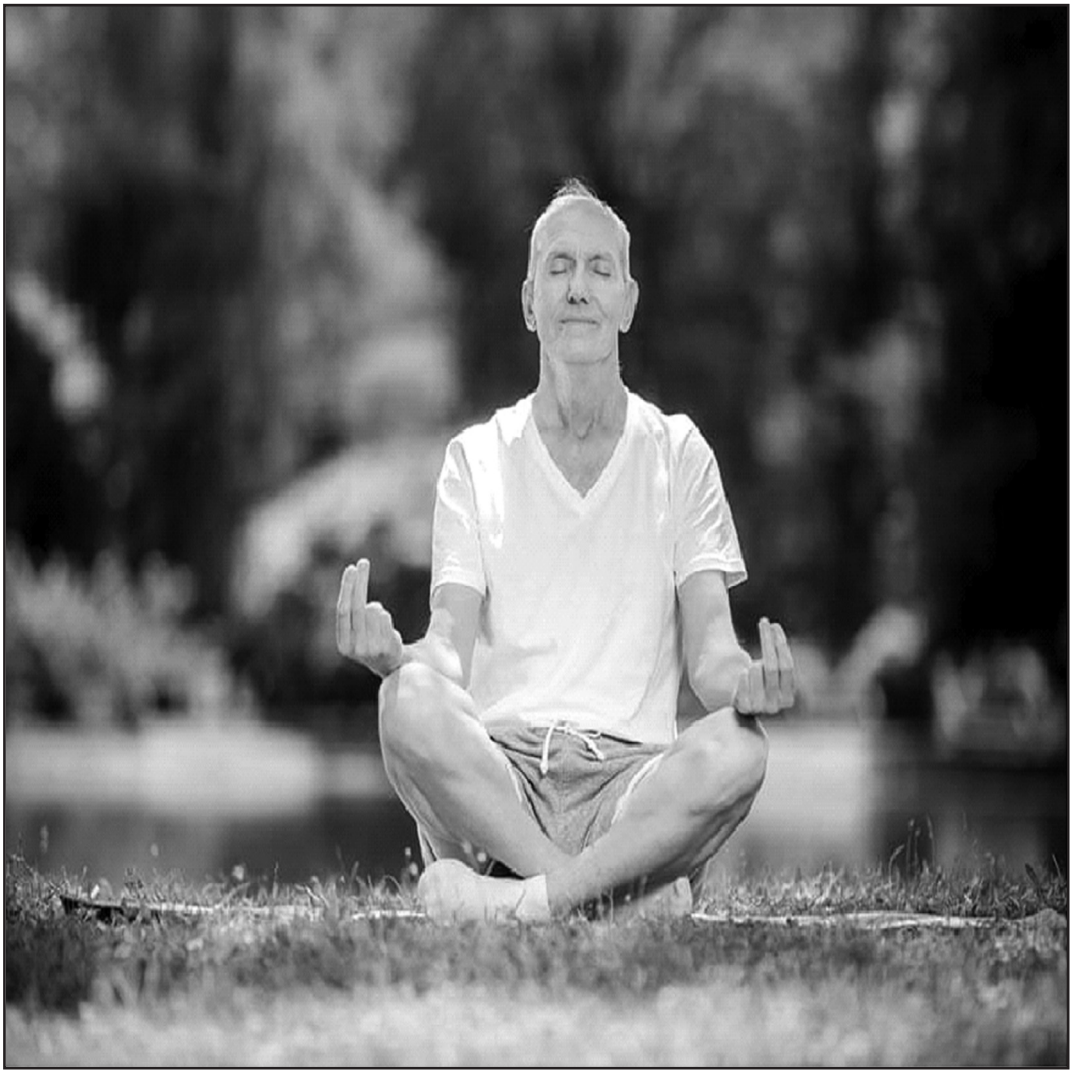

वृद्धावस्था में जीवन से पलायन की मनः स्थिति उचित नहीं है आवश्यकता इस बात की है कि हमें स्वयं को संकुचित दायरे में डालने की बजाय घर-परिवार और समाज के लिए और अधिक व्यापक दृष्टि व सहयोग की भावना का विकास करने का प्रयास करना चाहिए। यदि हम समाज में रहते हैं तो उससे कट कर नहीं रह सकते। घर-परिवार व समाज से जुड़े रहने के लिए भी साधनों की उपेक्षा संभव नहीं। बढ़ती आयु के साथ-साथ व्यक्ति को दूसरे लोगों के साथ और सहयोग की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है। यदि बड़ी आयु में हम सचमुच जीवन को अधिक सार्थक व गरिमापूर्ण बनाना चाहते हैं तो हमें अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति को त्यागकर उसे अधिकाधिक व्यापक बनाना चाहिए। हमारी स्वीकार्यता घटने के बजाय बढ़नी चाहिए।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 61

सीता राम गुप्ता

पलायन की अपेक्षा जीवन में रुचि बनाए रखना श्रेयस्कर

पिछले दिनों मेरे एक मित्र के जन्मदिन की पचहत्तरवीं वर्षगाँठ थी, जिसकी पूर्वसंध्या पर उन्होंने एक संदेश भेजा – मैं कल से व्हाट्सएप का प्रयोग नहीं करूँगा अत: कृपया व्हाट्सएप पर मुझे कोई संदेश न भेजें। बहुत जरूरी हो तो आप मुझे फोन कर सकते हैं। इससे एक सप्ताह पूर्व भी उनका एक संदेश आया था कि एक सप्ताह बाद वे पचहत्तर वर्ष के हो जाएंगे और सभी लोग उनके लिए प्रार्थना करें कि वे अपना शेष जीवन सांसारिक मोह-माया से मुक्त होकर व्यतीत कर सकें। हमारे यहाँ जीवन को चार अवस्थाओं में विभक्त किया गया है— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास। यदि हम इस दृष्टि से देखें तो पचहत्तर वर्ष की आयु के उपरांत सन्यास की अवस्था प्रारंभ हो जाती है। पारंपरिक वैदिक रीति से जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा उत्तम है लेकिन यह विचार करना भी अनिवार्य है कि आज की परिस्थितियों में यह कहाँ तक संभव है?

आज परिस्थितियाँ बहुत बदल चुकी हैं। आज की परिस्थितियों में हजारों वर्ष पूर्व की जीवनचर्या का पालन करना कठिन ही नहीं असंभव है। पुरातन परंपरा के अनुसार पचहत्तर वर्ष के बाद की अवस्था सन्यास की है जिसमें घर-बार छोड़कर जंगल में जाकर जीवन व्यतीत करना होता है। क्या आज ये संभव है? यदि हम सन्यास ले लेंगे तो कहाँ जाएंगे? जंगलों में जहाँ वन्य जीवों के लिए ही स्थान कम पड़ रहा है वहाँ मनुष्य द्वारा जंगलों में जाकर अपना शेष जीवन व्यतीत करने की सोचना भी उचित प्रतीत नहीं होता। जो लोग एक निश्चित उद्देश्य के लिए कम आयु में ही सन्यास लेकर सन्यस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं उनमें से शायद ही कोई सही

जीवन के अंतिम क्षणों तक सामान्य रीति से जीवन व्यतीत हो जाए तो उसमें भी कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। वास्तव में बहुत सामान्य बने रहना ही लोगों के लिए कठिन होता है क्योंकि वे निर्लिप्त, विरक्त अथवा मोह-माया से मुक्त आदि होना नहीं चाहते अपितु घर-परिवार और समाज को ऐसा कुछ दिखाना चाहते हैं जिससे उनकी समाज में एक विशेष छवि बन जाए। न शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा संभव है न मन की इच्छाओं की। अच्छा तो यही है कि जीवन को जितना संतुलित कर सकते हैं करें शेष सामान्य रीति से घटित होने दें।

अर्थों में सन्यासी हो। वैसे भी सन्यस्थ जीवन का पालन तभी उचित लगता है जब उससे पूर्व का जीवन भी उसी पद्धति से अवस्थानुकूल व्यतीत किया गया हो।

यदि जीवन के अंतिम क्षणों तक सामान्य रीति से जीवन व्यतीत हो जाए तो उसमें भी कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। वास्तव में बहुत सामान्य बने रहना ही लोगों के लिए कठिन होता है क्योंकि वे निर्लिप्त, विरक्त अथवा मोह-माया से मुक्त आदि होना नहीं चाहते अपितु घर-परिवार और समाज को ऐसा कुछ दिखाना चाहते हैं जिससे उनकी समाज में एक विशेष छवि बन जाए। न शरीर की आवश्यकताओं की उपेक्षा संभव है न मन की इच्छाओं की। अच्छा तो यही है कि जीवन को जितना संतुलित कर सकते हैं करें शेष सामान्य रीति से घटित होने दें। जहाँ तक सुविधाओं और तकनीक के प्रयोग का प्रश्न है इनका विवेकपूर्ण प्रयोग करने में कोई दोष नहीं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे इन सब चीजों से हमें आसानी ही होती है। आज के व्यस्त जीवन में संचार के आधुनिक विकसित साधनों का कितना महत्त्व है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है। आयु बढ़ने के साथ तो कई सुविधाएँ अत्यावश्यक की श्रेणी में सम्मिलित हो जाती हैं।

यदि व्हाट्सएप की ही बात करें तो ये एक अत्यंत उपयोगी माध्यम है। यदि हम इसके द्वारा निरर्थक मेल भेजने में लगे रहते हैं तो ये हमारा दोष है न कि व्हाट्सएप का। यदि हम आयु के किसी पड़ाव पर निर्णय लेते हैं कि अब हम व्हाट्सएप अथवा अन्य संचार सुविधाओं का उपयोग नहीं करेंगे तो इसका एक अर्थ यह भी निकलता है कि अब तक हम इनका अत्यधिक उपयोग अथवा दुरुपयोग कर रहे थे। वास्तव में इन सब बातों पर समय रहते विचार करना अनिवार्य होता है। हाँ व्हाट्सएप, फेसबुक अथवा अन्य सुविधाएँ एक लत बन गई हैं तो उन्हें छोड़ने का निर्णय उत्तम होगा इसमें संदेह नहीं। हमारे लिए उचित तो यही होगा कि हम गलत चीजों को छोड़ दें व अन्य उपयोगी अथवा आवश्यक चीजों को अपना भी लें। घोर व्यावसायिक वृत्ति को त्याग दें लेकिन हमारी रचनात्मकता में किसी भी कीमत पर कमी नहीं आनी चाहिए। इससे स्वयं का विकास भी होगा और समय भी अच्छा व्यतीत होगा।

यदि हम अकेले अथवा जीवनसाथी के साथ परिवार से अलग रहते हैं तथा घर के काम में सहायता के लिए सर्वेंट अथवा मेड रखते हैं तो क्या उन्हें भी हटा देंगे? यदि हम पेंशनर हैं तो क्या पेंशन लेना भी बंद कर देंगे? शायद ये सब संभव न हो क्योंकि आज के युग में पैसों के बिना किसी का जीवन नहीं चल सकता। साधु-सन्यासियों का भी नहीं। फिर केवल कुछ बातों के विषय में भावनात्मक निर्णय क्यों? एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न और भी है और वो यह है कि यदि हम अपने जीवनसाथी के साथ रहते हैं तो क्या उसको भी ऐसा करने की छूट देते हैं? प्राय: ऐसा होता है कि हम अपने जीवनसाथी अथवा परिवार को तो यथावत सब करने की छूट दे देते हैं

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 63

लेकिन स्वयं महात्मा बनने का नाटक करते रहते हैं। ऐसी नाटकीयता का कोई लाभ नहीं। यथार्थ से पलायन भी हमारी समस्याओं को बढ़ा देता है। वास्तविकता को स्वीकार कर लेने से बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न ही नहीं होती।

वास्तव में जब तक जीवन है इस संसार में मोह-माया की पूर्णत: उपेक्षा संभव ही नहीं। मोह के कारण ही हम आपस में जुड़े हुए हैं। स्पष्ट है कि सेवानिवृत्ति अथवा साठ-सत्तर अथवा पचहत्तर-अस्सी वर्ष की आयु के बाद भी हमें इसी दुनिया में रहना है तो फिर इस आकर्षक संसार से जान-बूझकर विरक्ति अथवा पलायन क्यों? ऐसा भी संभव है कि अधिक मोह-माया के नाटक के कारण हम कहीं के भी न रह पाएँ। कुछ लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी होती है कि वे कोई भी सहायक आसानी से रख सकते हैं। मेरा मानना है कि यदि आपके पास पहले से कोई सहायक नहीं है और आपको कार्य करने में असुविधा होती है तो कोई न कोई सहायक रख लीजिए। इससे न केवल आपको जीवन में सुविधा हो जाएगी अपितु किसी जरूरतमंद को रोजगार भी मिल जाएगा।

आयु के साथ-साथ कुछ गतिविधियाँ अथवा कुछ चीजें स्वत: छूट जाती हैं। ऐसे में हमें उपयोगी वस्तुओं और सुविधाओं की बजाय निरर्थक चीजों से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। कुछ लोग एक अवस्था के बाद हर काम करना छोड़ देते हैं अथवा किसी भी बात में रुचि नहीं लेते। जब तक जीवन है हमें न केवल काम करते रहना चाहिए अपितु इस सुंदर संसार की हर बात में रुचि भी बनाए रखनी चाहिए। शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए दोनों चीजें अनिवार्य हैं। वास्तव में लोग आयु के बढ़ने से बूढ़े नहीं होते अपितु इसलिए बूढ़े हो जाते हैं कि उनके पास जीवन को जीने का कोई लक्ष्य नहीं होता। जे आर डी टाटा, डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया आदि महानुभावों ने लंबी आयु पाई व जीवन की अंतिम साँस तक कार्य किया और अपने अंतिम दिनों में जो कार्य किया वह उनके पिछले कार्यों के मुकाबले में भी बहुत बेहतर था। यही वास्तविक सन्यास है। अंतिम दिनों में समाज को अपना सर्वस्व दे देने से अच्छा कुछ भी नहीं।

सादगी से जीवन जीना अच्छी बात है लेकिन सादगी का अर्थ अकर्मण्यता अथवा पलायन नहीं होता। सादगी से तात्पर्य कंजूसी अथवा असामान्य अवस्था में रहना भी नहीं है। अच्छे ढंग से रहने और अच्छे कपड़े पहनने में भी कोई बुराई नहीं होती। सलीके से रहना और कार्य करना न केवल व्यक्ति के आत्मविश्वास में वृद्धि करता है अपितु समाज में भी यथोचित सम्मान दिलवाता है। कई बार सादगी अथवा विशेष रीति से जीवन जीने के लिए हम परिवार के सदस्यों अथवा समाज के लिए मुसीबतें खड़ी कर देते हैं जो किसी भी तरह से ठीक नहीं कहा

जब तक जीवन है हमें न केवल काम करते रहना चाहिए अपितु इस सुंदर संसार की हर बात में रुचि भी बनाए रखनी चाहिए। शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिए दोनों चीजें अनिवार्य हैं। वास्तव में लोग आयु के बढ़ने से बूढ़े नहीं होते अपितु इसलिए बूढ़े हो जाते हैं कि उनके पास जीवन को जीने का कोई लक्ष्य नहीं होता। जे आर डी टाटा, डॉ. मोक्षगुण्डम विश्वेश्वरैया आदि महानुभावों ने लंबी आयु पाई व जीवन की अंतिम साँस तक कार्य किया और अपने अंतिम दिनों में जो कार्य किया वह उनके पिछले कार्यों के मुकाबले में भी बहुत बेहतर था। यही वास्तविक संन्यास है। अंतिम दिनों में समाज को अपना सर्वस्व दे देने से अच्छा कुछ भी नहीं।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 64

सादगी से जीवन जीना अच्छी बात है लेकिन सादगी का अर्थ अकर्मण्यता अथवा पलायन नहीं होता। सादगी से तात्पर्य कंजूसी अथवा असामान्य अवस्था में रहना भी नहीं है। अच्छे ढंग से रहने और अच्छे कपड़े पहनने में भी कोई बुराई नहीं होती। सलीके से रहना और कार्य करना न केवल व्यक्ति के आत्मविश्वास में वृद्धि करता है अपितु समाज में भी यथोचित सम्मान दिलवाता है। अपनी उपयोगिता कभी नष्ट नहीं होने देनी चाहिए। अधिक ना-नुकुर और अपनी अनुपयोगिता के कारण ही अधिकांश लोग संबंधों के कूड़ेदान में फेंके जाने को अभिशप्त होते हैं।

जा सकता। अपनी उपयोगिता कभी नष्ट नहीं होने देनी चाहिए। अधिक ना-नुकुर और अपनी अनुपयोगिता के कारण ही अधिकांश लोग संबंधों के कूड़ेदान में फेंके जाने को अभिशप्त होते हैं। सादगी व्यवहार व चरित्र में होनी चाहिए न कि वस्त्रों में। साधारण अथवा अवसरानुकूल वस्त्रों के अभाव में एक बड़ा विद्वान भी सभा में अपेक्षित सम्मान नहीं पाता है।

हमें स्वयं को संकुचित दायरे में डालने की बजाय घर-परिवार और समाज के लिए और अधिक व्यापक दृष्टि व सहयोग की भावना का विकास करने का प्रयास करना चाहिए। यदि हम समाज में रहते हैं तो उससे कट कर नहीं रह सकते। घर-परिवार व समाज से जुड़े रहने के लिए भी साधनों की उपेक्षा संभव नहीं। बढ़ती आयु के साथ-साथ व्यक्ति को दूसरे लोगों के साथ और सहयोग की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है। यदि बड़ी आयु में हम सचमुच जीवन को अधिक सार्थक व गरिमापूर्ण बनाना चाहते हैं तो हमें अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति को त्यागकर उसे अधिकाधिक व्यापक बनाना चाहिए। हमारी स्वीकार्यता घटने के बजाय बढ़नी चाहिए। इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्य अनुभवों की खान बन जाता है। इन अनुभवों तथा योग्यता और क्षमता का उपयोग सीमित न रहकर पूरे समाज के लिए होना चाहिए। संकुचित दृष्टिकोण रखने वाला अथवा एकाकी जीवन व्यतीत करने की आकांक्षा रखने वाला व्यक्ति समाज को शायद ही कुछ दे पाए!

लेखक मनोवैज्ञानिक विषयों के समर्थ लेखक हैं।

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 65

मनोगत

माननीय महोदय,

आपको मकर संक्रांति, गणतंत्र दिवस, वसंत पंचमी, महाशिवरात्रि व होली की हार्दिक शुभकामनाएँ। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि ये पर्व आपके और आपके परिवार के लिए मंगलमय हों।

हमारे लिए यह परम सौभाग्य की बात है कि 'मंगल विमर्श' को आपका सहयोग निरंतर मिल रहा है। वैश्विक आपदा के कोरोना काल में भी हमें आपका जो सहयोग व समर्थन मिलता रहा उसके हम आभारी हैं। आपके इस सहयोग के बल पर ही पत्रिका के छः वर्ष पूर्ण हुए हैं और पत्रिका ने सातवें वर्ष में सफलतापूर्वक प्रवेश किया है। इस अवसर पर पत्रिका का जनवरी-मार्च, 2021 अंक आपके हाथों में समर्पित है।

यह संतोष की बात है कि पिछले एक वर्ष से जारी कोरोना महामारी के दौरान, अनेक कठिनाईयों के बावजूद भी पत्रिका का प्रकाशन निरंतर जारी है। इस अवधि में कुरीयर सेवा में व्यवधान उत्पन्न होने के कारण पत्रिका कुरियर से नहीं भेजी जा सकी, लेकिन पत्रिका ई-मेल के माध्यम से आपको नियमित रूप से भेजी जा रही है। यदि आपके ई-मेल पर आपको पत्रिका प्राप्त नहीं हुई है तो कृपया सूचित करने की कृपा करें, जिससे पत्रिका पुनः भेजी जा सके।

आशा है कि आपका स्नेह व सहयोग हमें भविष्य में भी निरंतर मिलता रहेगा।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

'मंगल विमर्श' पत्रिका का स्वामित्व संबंधी विवरण

1. प्रकाशन स्थान	:	सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली-110084
2. प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
3. मुद्रक का नाम	:	आदर्श गुप्ता
क्या भारत का नागरिक है	:	हाँ
पता	:	बी-170, प्रियदर्शिनी विहार, दिल्ली-92
4. प्रकाशक का नाम	:	आदर्श गुप्ता
पता	:	बी-170, प्रियदर्शिनी विहार, दिल्ली-92
5. संपादक का नाम	:	सुनील पांडेय
पता	:	120-वार्तालोक अपार्टमेंट, वसुंधरा, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
6. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों	:	मंगल सृष्टि

मैं आदर्श गुप्ता एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य है।

दिनांक : 01 जनवरी, 2021

आदर्श गुप्ता
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

MV Jan-March 2021 Drft_Layout 1 19-12-2020 11:55 Page 66

मंगल विमर्श

सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श त्रैमासिक पत्रिका

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....

रुपये का ड्राफ्ट/ चैक क्रं. ..... दिनांक.....

बैंक..... भेज रहे हैं,

कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम.....

पता.....

.....

..... पिनकोड .....

फोन :..... मोबाइल:.....

इ-मेल.....

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-42633153

ई-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in